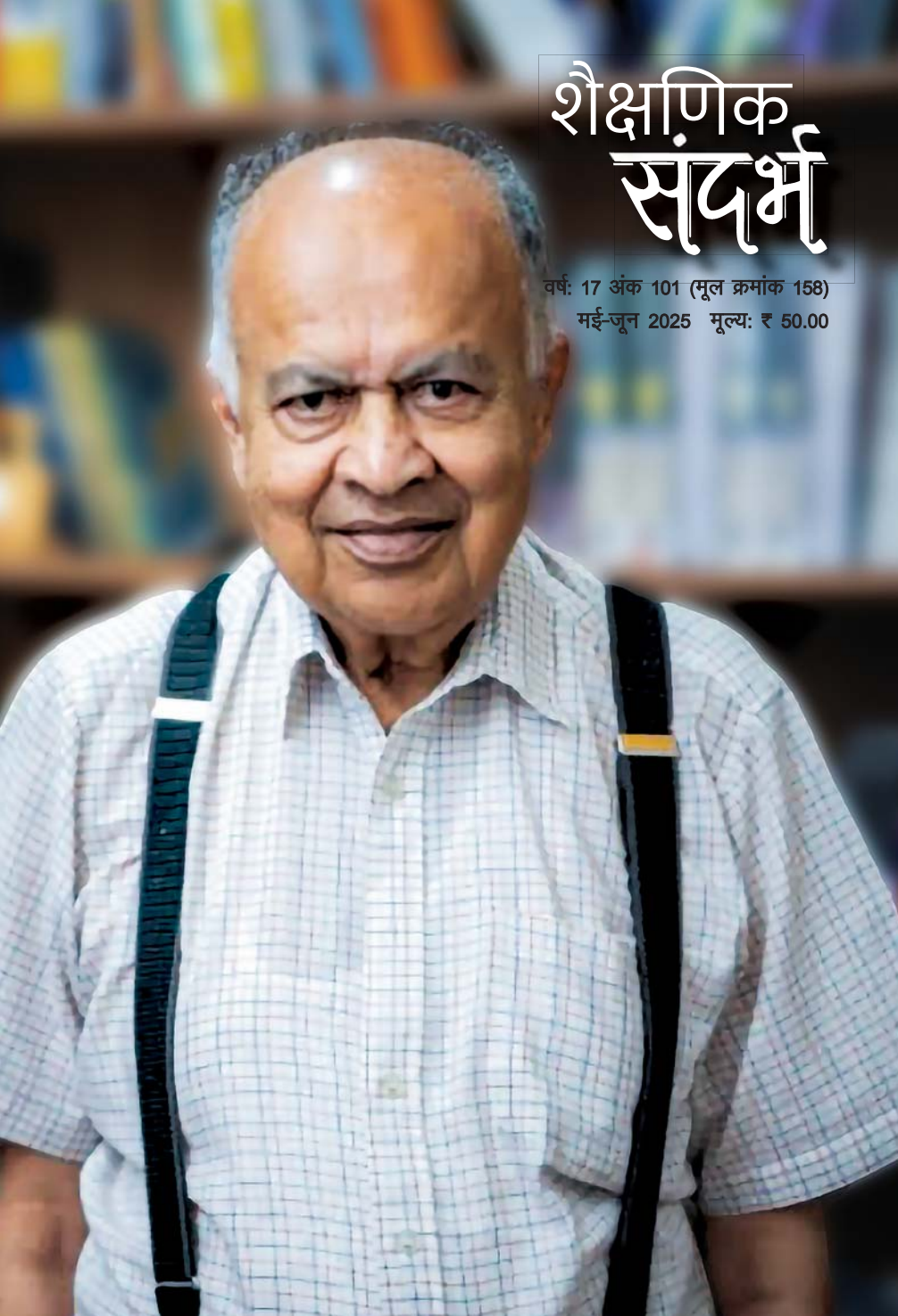

शैक्षणिक संदर्भ

वर्ष: 17 अंक 101 (मूल क्रमांक 158)
मई-जून 2025 मूल्य: ₹ 50.00

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

सहसम्पादक
पारुल सोनी

सहायक सम्पादक
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सहयोग
हिमांशु बावनकर

सम्पादकीय सलाहकार
सुशील जोशी
उमा सुधीर

आवरण: राकेश खत्री

वितरण: झनक राम साहू

सहयोग: कमलेश यादव

शैक्षणिक संदर्भ

वर्ष: 17 अंक 101 (मूल क्रमांक 158)
मई-जून 2025 मूल्य: ₹ 50.00

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 4200944
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी रजिस्टर्ड पोस्ट से।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	450.00	1200.00	8000.00

मुखपृष्ठ: जयंत नारलीकर की तस्वीर। इन अव्वल दर्जे के खगोलशास्त्री ने भारत में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में जो योगदान दिया, वह बेमिसाल है। एक वैज्ञानिक होने के साथ ही, वे एक उम्दा विज्ञान कथाकार भी थे। प्रस्तुत अंक के प्रकाशन के दौरान ही जयंत नारलीकर के निधन की दुखद खबर मिली। यह अंक उनकी याद और कहानियों को समर्पित। उनकी विज्ञान-कथा दाईं सूँड के गणेशजी का अन्तिम भाग पृष्ठ 74 पर पढ़ा जा सकता है।

कवर 3: बड़ी-बड़ी आँखों से टकटकी लगाए, न जाने क्या देखते दो लीमर। ये झबरीली काली-सफेद पूँछें महज़ पूँछ नहीं, प्यार की महक हैं। आखिर लीमर भी सामाजिक जीव हैं, जहाँ अपनी महक से किसी अन्य लीमर को मोहना जीवविज्ञान ही नहीं सामाजिक विज्ञान की नज़र से भी अहमियत रखता है। कैसे? जानिए विपुल कीर्ति शर्मा के लेख को पढ़कर, पृष्ठ 05 पर।

पिछला आवरण: 1965 में, 'भारत दर्शन' नाम की विज्ञान लेक्चर यात्रा की शुरुआत में तब के प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री व वित्त मंत्री टीटी कृष्णमाचारी के साथ जयंत नारलीकर। नारलीकर के अनुसार इन 'वीवीआईपी' व्यक्तियों से हुई इस मुलाकात ने उन्हें भारत में खगोलशास्त्र को लोकप्रिय करने में खास मदद की - भले ही इस यात्रा को वे अकादमिक मुलाकातों तक सीमित रखना चाहते थे।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINK : कवर 1 - https://currentaffairs.khanglobalstudies.com/jayant-narlikar/
कवर 3 - https://www.natureworldnews.com/articles/56635/20230524/ancient-seafaring-fauna-madagascar-what-left-behind.htm
कवर 4 - https://https://indianexpress.com/article/explained/jayant-narlikar-science-india-10017909/

इस अंक में उन चित्रों के स्रोत जिनके बारे में चित्र या लेख के साथ उल्लेख नहीं है, इंटरनेट की विविध वेबसाइट हैं।

हमारा
आगामी प्रकाशन

तीन फुट का हाथी

स्रोत वर्ग पहेली संकलन

मूल्य: ₹65

एकलव्य की विज्ञान पत्रिका **स्रोत** में प्रकाशित वर्ग पहेलियों का दूसरा संकलन। शब्दों के हेर-फेर, तर्क, भाषा-ज्ञान और विज्ञान के तथ्यों से भरपूर दिलचस्प वर्ग पहेलियाँ। विज्ञान और प्रौद्योगिकी में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए एक ज़रूरी किताब।

अपनी प्रति बुक कराने के लिए सम्पर्क करें...

फोन: +91 755 297 7770-71-72
वेबसाइट: www.pitarakart.in; ईमेल: pitara@eklavya.in

eklavya

संरक्षण नियमों का रहस्य: नोएथर की अनूठी...

किसी बन्द तंत्र में ऊर्जा संरक्षित रहती है – इस नियम के पीछे सममिति का क्या किरदार है? भौतिकी कुछ बुनियादी सत्यों पर टिकी है। मगर इन बुनियादी सत्यों की बुनियाद क्या है? ऐसे सत्यों को सवालों के घेरे में लाकर नई बुनियादें उभारना आसान काम तो नहीं है। मगर नोएथर ने अपने जीवन में इसे बखूबी किया, जिस पर वैज्ञानिक ही नहीं, ऐतिहासिक व दार्शनिक चिन्तन की भी ज़रूरत है। जानिए यह सबकुछ, अजय शर्मा और विवेक मेहता के लेख में।

17

आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल

2012 में, भोपाल शहर में शुरू हुआ यह स्कूल अनूठा था। क्यों? इसके जवाब अनिल सिंह के सिलसिलेवार किस्सों में बुने हैं। यह लेख उसी सिलसिले की पहली कड़ी है। इस स्कूल से जुड़ना, बच्चों के साथ मुहावरे सीखना-सिखाना – यह सब न सिर्फ अनिल के लिए एक मज़ेदार अनुभव रहा, बल्कि इस अनुभव को जानना पढ़नेवालों के लिए भी महत्वपूर्ण और रोचक होगा।

39

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-101 (मूल अंक-158), मई-जून 2025

इस अंक में

05 | लीमर में मिले प्यार के रसायन
विपुल कीर्ति शर्मा

10 | कहानी अमूर्त चिन्हों की
आमोद कारखानीस

17 | संरक्षण नियमों का रहस्य: नोएथर की अनूठी खोज
अजय शर्मा और विवेक मेहता

27 | एक पाण्टा नाम
अमित और जयश्री

39 | आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल
अनिल सिंह

48 | पढ़ाई में कैसे मददगार हैं चित्र?
राजेन्द्र देशमुख

54 | बच्चे, नागरिकता और कविता
समीना मिश्रा

63 | बच्चे और एटलस
प्रकाश कान्त

74 | दाईं सूँड के गणेशजी (विज्ञान कथा)
जयंत विष्णु नारलीकर

86 | जब कुत्ता पेशाब करता है तो एक टांग क्यों उठा लेता है?
सवालीराम

हमारा
आगामी प्रकाशन

हाथ के साथ

संकलन: अरविंद गुप्ता

मूल्य: ₹ 180

क्या आपने सोचा है, पुरानी प्लास्टिक की बोतलें, डिब्बियाँ, हवाई चप्पलें, सोडा वॉटर के ढक्कन आदि से हम कई गतिशील खिलौने बना सकते हैं! अगर नहीं, तो यह किताब आपको ज़रूर आश्चर्यचकित करेगी। यह किताब विविध रोचक गतिविधियों का संकलन है। ये गतिविधियाँ मनोरंजन के साथ-साथ खेल-खेल में विज्ञान और गणित की जटिल अवधारणाओं को समझने में भी कारगर हैं।

विद्यार्थियों, शिक्षकों और उन सबके लिए, जो सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं से जुड़े हैं, एक महत्वपूर्ण किताब।

अपनी प्रति बुक कराने के लिए सम्पर्क करें...

एकलव्य फाउंडेशन

जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (मप्र)

फोन: **+91 755 297 7770-71-72;** ईमेल: **pitara@eklavya.in**

www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

लीमर में मिले प्यार के रसायन

विपुल कीर्ति शर्मा

पिछले अंक में हमने यह जानने की कोशिश की थी कि प्रजनन के लिए पार्टनर खोजने में जीव के शरीर से निकलने वाली गन्ध की क्या भूमिका होती है। इस बार मेडागास्कर के लीमर को बतौर उदाहरण लेते हुए देखने की कोशिश करेंगे कि स्तनधारी जीवों में यौन या सेक्स में गन्ध का क्या रोल है, गन्ध उत्पन्न कैसे होती है और क्या वास्तव में मादाएँ इस गन्ध के वशीभूत हो जाती हैं।

कुछ मामलों में इन्सान अन्य जीवों से भिन्न हैं। एक अन्तर तो यह है कि हम में से अधिकांश लोग रोज़ नहाते हैं। सुगन्धित साबुन, डिओडरेन्ट, क्रीम और सेंट के विज्ञापनों के झूठे वादों और दावों से हमें लगने लगता है कि हमारी खुशबू से सब आकर्षित हो रहे हैं। किन्तु वैज्ञानिकों का मानना है कि पलकों या चेहरे की त्वचा पर पाए जाने वाले तेल और बगल से निकलने वाले पसीने में अनेक प्रकार के रसायन होते हैं जो प्रेम प्रस्ताव से लेकर खतरे के सन्देश भी देते हैं।

हाल ही में, शोधकर्ताओं ने पहली बार बन्दरों के रिश्तेदार लीमर में सम्भावित सेक्स फेरोमोन्स को खोज निकाला है। नर रिंग टेल्ड लीमर की कलाइयों पर स्थित ग्रन्थियों से फलों जैसी मीठी खुशबू उत्पन्न होती है जो प्रजनन के मौसम में मादाओं को आकर्षित करती है।

चित्र-1: रिंग टेल्ड लीमर। *लीमर मेडागास्कर में पाए जाने वाले छोटे प्राइमेट्स हैं व मेडागास्कर के मूल निवासी हैं। काले और सफेद रंग के इस जन्तु की पूँछ काफी लम्बी व धारीदार होती है, जबकि आँखें बड़ी होती हैं। लीमर की लगभग 100 प्रजातियाँ पाई जाती हैं।*

चित्र-2: *प्रजनन काल के दौरान, नर लीमर कलाई पर स्थित ग्रन्थियों से स्रावित होने वाली मीठी गन्ध को अपनी पूँछ पर रगड़कर, उसे मादाओं के सामने लहराकर उन्हें आकर्षित करते हैं। इस व्यवहार को 'स्टिंक फ्लर्टिंग' कहा जाता है।*

वार्षिक प्रजनन के मौसम में नर लीमर कलाई पर पाई जाने वाली ग्रन्थियों को अपनी झबरीली पूँछ से रगड़ते हैं और मादा लीमर के चेहरे के पास लहराते हैं। नर लीमर का यह व्यवहार बिलकुल वैसा ही है जैसे एक प्रेमी खुशबू से भरे फूलों का गुलदस्ता प्रेमिका को भेंट करता है। नर लीमरों द्वारा पूँछ लहराने के इस व्यवहार का उल्लेख टोक्यो विश्वविद्यालय के जैव रसायन के प्रोफेसर काजुशिगे तोउहारा ने *करन्ट बायलॉजी* जनरल में छपे अपने शोध पत्र में किया है। नरों द्वारा मादा के सामने पूँछ लहराने के व्यवहार को 'स्टिंक फ्लर्टिंग' कहते हैं।

फेरोमोन्स क्या होते हैं?

मनुष्यों और अन्य जन्तुओं में सूँघकर रसायनों की पहचान करने का तरीका उद्विकास की प्रक्रिया में बहुत पहले ही विकसित हो गया था। जिन जन्तुओं में मस्तिष्क ज़्यादा विकसित नहीं हुआ है, वे तो विपरीत सेक्स के साथी की पहचान केवल रसायनों को सूँघकर ही करते हैं। मनुष्यों में भी गन्ध की भूमिका जन्म लेने से पहले ही शुरू हो जाती है। भोजन में पाए जाने वाले गन्ध के रसायन प्लेसेन्टा को पारकर भ्रूण में जा सकते हैं। कुछ वैज्ञानिकों को लगता है कि माँ जो खाती है, उसकी खुशबू भ्रूण को जन्म से पहले ही यह सीखने में मदद करती है कि उसे जन्म के बाद क्या खाना चाहिए। शायद इसीलिए नवजात बच्चे दूध की खुशबू को पहचान लेते हैं। 1959 में कीट-पतंगों में फेरोमोन्स की खोज

के बाद से ही मनुष्यों में फेरोमोन्स को खोजने के प्रयास चल रहे हैं परन्तु अभी तक हमें कोई खास सफलता नहीं मिली है।

कौन हैं लीमर?

लीमर स्तनधारी प्राणि हैं जो केवल मेडागास्कर में पाए जाते हैं। मेडागास्कर में इनकी लगभग 100 प्रजातियाँ मिलती हैं। अधिकांश लीमर छोटे होते हैं तथा इनका चेहरा नेवले के समान होता है परन्तु आँखें काफी बड़ी होती हैं। ये मुख्य रूप से वृक्षों पर रहते हैं और रात में सक्रिय होते हैं। मेडागास्कर में लीमर का कोई प्राकृतिक शिकारी नहीं है परन्तु जहाँ भी जंगल खत्म हुए हैं, वहाँ इनकी अनेक प्रजातियाँ संकटग्रस्त हैं।

लीमर का सामाजिक तानाबाना

इनका सामाजिक ढाँचा बहुत रोचक होता है। एक समूह में नर एवं मादाएँ मिलाकर 35 सदस्य हो सकते हैं। समूह की मुखिया मादा लीमर होती है। वयस्क होने पर भी सभी मादाएँ अपने समूह से जुड़ी रहती हैं। मतलब उनके समूह में नानी, माँ, बेटियाँ और बहनें होती हैं।

चित्र-3: *दुनिया पर कौन राज करता है? वैसे, लीमर के सामाजिक ढाँचे में मादाएँ राज करती हैं। इनके समाज का नेतृत्व एक मादा करती है व वयस्क होने पर भी सभी मादाएँ अपने समूह से जुड़ी रहती हैं।*

जबकि नर को वयस्कता पर समूह छोड़कर जाना होता है। समूह की सभी मादाएँ अक्सर सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाए रखती हैं तथा एक-दूसरे का सम्मान बालों को सँवारकर करती हैं। समूह में अपना प्रभाव जमाने के लिए मादाएँ अक्सर नरों पर हमले करती रहती हैं। लड़ाई करने में वे कभी पीछे नहीं रहतीं। इसलिए प्रजनन ऋतु के अलावा नर अक्सर मादाओं से सुरक्षित दूरी बनाए रखते हैं। प्रत्येक समूह में एक से तीन तक उच्च ओहदे वाले नर भी मौजूद होते हैं।

लीमर में प्रजनन

ढाई साल की उम्र में लीमर वयस्क हो जाते हैं। मादा की प्रजनन ऋतु मई के महीने में 7 से 21 दिनों की होती है। इस सीमित अवधि में भी मादा लीमर केवल दो दिनों के लिए ही मैथुन के लिए तैयार होती हैं। प्रजनन ऋतु के दौरान नर मादा के जननांगों का निरीक्षण करने आते हैं और मैथुन का प्रयास करते हैं। वे मादाएँ जो मैथुन के लिए तैयार नहीं होतीं, वे नरों के प्रति आक्रामक रवैया अपनाती हैं और उनका पीछा करके उन्हें खदेड़ देती हैं। उच्च श्रेणी के नर इस दौरान बगैर डरे मादा लीमर के पास बने रहते हैं। जब मादा मैथुन के लिए तैयार हो जाती हैं तो नरों द्वारा उनके चेहरे के सामने लहराई गई पूँछ के इत्र को सूँघती हैं। साल के अन्य दिनों की तुलना में प्रजनन ऋतु के दौरान नर की कलाई ग्रन्थियों से निकलने वाला इत्र अधिक मीठी गन्ध वाला होता है।

प्यार के रसायन

वैज्ञानिकों को पहले से यह जानकारी थी कि नर रिंग टेल्ड लीमर की कलाई में विपरीत सेक्स को आकर्षित करने वाले रसायन 'फेरोमोन्स' की ग्रन्थियाँ मौजूद होती हैं। सामाजिक पद, प्रजनन की क्षमता तथा इलाके की सुरक्षा में ग्रन्थियों के स्राव का इस्तेमाल वैसे ही होता है जैसे शेर या कुत्ते जगह-जगह मूत्र छिड़काव अपने इलाके, स्वास्थ और हैसियत को जताने में करते हैं। जापानी शोध संस्थान के शोधार्थियों के अनुसार लीमर की कलाई पर पाई जाने वाली इत्र ग्रन्थियाँ केवल रिंग टेल्ड लीमर में ही पाई जाती हैं। इसके द्वारा मादा को प्रभावित करने के लिए नर 'स्टिंक फ्लर्टिंग' करते हैं। मादाएँ इस इत्र की फूलों-फलों जैसी मीठी खुशबू को कुछ पलों के लिए सूँघकर कई बार नर की पूँछ को चाटती भी देखी गई हैं। यह सब कुछ ही पलों में घटता है और मादा की जिज्ञासा और उत्तेजना को बढ़ा देता है। युवा नर लीमर में, वरिष्ठ नरों की तुलना में ज़्यादा गन्ध उत्पन्न होती है क्योंकि उनमें टेस्टोस्टेरॉन नामक नर हॉर्मोन की मात्रा अधिक होती है।

जापानी शोधकर्ताओं ने सात वर्षों के अध्ययन के दौरान नर लीमर की कलाई से उत्पन्न होने वाले रसायनों को एकत्रित कर इनका रसायनिक विश्लेषण किया और तीन मीठी सुगन्ध उत्पन्न करने वाले यौगिकों की पहचान की। वैज्ञानिकों ने प्रजनन काल के दौरान एवं उसके बाद भी कलाई ग्रन्थियों से नमूने निकालकर गैस क्रोमैटोग्राफी एवं मास स्पेक्ट्रोमेट्री से उनकी पड़ताल की। पृथक किए गए तीन घटक थे – डोडेकेनॉल, 12-मिथाइल ट्राइडेकैनॉल और टेट्राडेकैनॉल। वैज्ञानिकों ने पाया कि जब नर मादा की खोज में रहते हैं तब इन तीनों तत्वों की मात्रा अधिक हो जाती है। शोधकर्ताओं ने इन तत्वों को रुई के फाहों में अलग-अलग करके मादा को सुँघाया। मादा लीमर ने इनमें तब ही रुचि दिखाई जब तीनों तत्व रुई के फाहों में एकसाथ मिश्रित रूप में मौजूद थे। बूढ़ी मादाएँ ऐसे फाहों से बेपरवाह बनी रहीं।

नवजात मेमनों को खोजने के लिए भी मादा भेड़ अक्सर इन्हीं रसायनों का उपयोग करती हैं। टेट्राडेकैनॉल अनेक कीटों के सेक्स फेरोमोन के रूप में पहचाना गया है। 12-मिथाइल ट्राइडेकैनॉल को पहली बार प्राइमेट्स में पहचाना गया है। पूरे जन्तु-जगत में इन तीनों एल्डिहाइड का इस्तेमाल तरह-तरह के संवादों के लिए व्यापक रूप से किया जाता है।

लीमर पर शोध के दूसरे पड़ाव में वैज्ञानिक फेरोमोन्स से लीमर के व्यवहार में बदलाव को देखना चाहते हैं और यह भी देखना चाहते हैं कि कैसे मादा नर का चयन करके सफलतापूर्वक मैथुन करती है। वैज्ञानिक प्राइमेट्स में फेरोमोन्स की खोज और उनके कार्य एवं प्रभाव को जानने के बहुत करीब हैं। फेरोमोन्स एक ही प्रजाति के विपरीत सेक्स के सदस्यों को ही प्रभावित करते हैं।

मुझे लगता है कि महिलाओं की त्वचा में भी पुरुषों को आकर्षित करने वाले प्यार के रसायन (फेरोमोन्स) भविष्य में खोजे जा सकते हैं। हालाँकि, अभी यह काम कितना आसान या मुश्किल है, यह वक्त ही बताएगा। वैसे एक मायने में यह खोज काफी खतरनाक भी होने वाली है क्योंकि जब ऐसी किन्हीं खुशबुओं को पहचान लिया जाएगा तब कम्पनियाँ कृत्रिम तरीके से फेक्ट्रियों में बनाकर, उन खुशबुओं से बाज़ार पाट देंगी।

विपुल कीर्ति शर्मा: शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर में प्राणिशास्त्र के वरिष्ठ प्रोफेसर हैं। इन्होंने 'बाघ बेड्स' के जीवाश्मों का गहन अध्ययन किया है तथा जीवाश्मित सीअर्चिन की एक नई प्रजाति की खोज की है। नेचुरल म्यूज़ियम, लंदन ने सम्मान में इस प्रजाति का नाम उनके नाम पर *स्टीरियोसिडेरिस कीर्ति* रखा है। वर्तमान में, वे अपने विद्यार्थियों के साथ मकड़ियों पर शोध कार्य कर रहे हैं।

कहानी अमूर्त चिन्हों की

आमोद कारखानीस

चित्र: संध्या राव

सन् 2010 का ग्रीष्म बीत चुका था और ठण्ड के मौसम की शुरुआत हो रही थी लेकिन अभी अपने चरम पर नहीं पहुँची थी, फ्रांस में सुहावना मौसम चल रहा था। सुबह के समय एक युवती गाँव के एक रेस्टोरेंट में बैठकर किसी का इन्तज़ार कर रही थी। उसके सामने कॉफी और यूरोप का मशहूर कोसांट और जैम रखा हुआ था, लेकिन उसकी रुचि नाश्ते में कम ही थी। वो बेसब्री से किसी की प्रतीक्षा कर रही थी।

थोड़ी ही देर में एक सज्जन वहाँ तशरीफ लाए। कठोर चेहरा, बढ़ी हुई दाढ़ी, मज़बूत कद-काठी, मोटे खाकी कपड़े, गम बूट, उम्र शायद चालीस पार होगी।

"माफ करें, मिस जेनवी। मुझे आने में कुछ देर हुई। दरअसल, मैं कल की तैयारी कर रहा था। आपका सन्देशा मिला और मालूम हुआ कि आप भी हमारे साथ चलने की इच्छुक हैं।"

"लेकिन इस बात का खयाल रखिए कि वहाँ तक जाना काफी मेहनत भरा काम है, जोखिम भरा भी है। आप हमारे साथ चलना चाहती हैं तो ज़रूर चलिए। फिर भी मुझे लगता

है कि आप अपने फैसले पर एक बार अच्छी तरह से सोच लीजिए।"

"हाँ, एक बात और, आप इस मिशन पर हमारे साथ अपनी इच्छा से आ रही हैं। इसलिए किसी भी आकस्मिक घटना की ज़िम्मेदारी हमारी नहीं होगी।"

जेनवी वॉन पेटज़िंगर (Genevieve Von Petzinger) उस समय कनाडा की विक्टोरिया यूनिवर्सिटी में पुरातत्व विज्ञान में एम.ए. कर रही थीं। आदिम मानव गुफाओं में बने चित्र, उनकी रिसर्च का विषय था। फ्रांस की किसी एक गुफा के कुछ चित्रों का अध्ययन करके भी उन्हें उपाधि मिल सकती थी लेकिन वे ठहरीं मेहनती रिसर्चर। उनकी जिज्ञासाएँ उन्हें शान्त नहीं बैठने दे रही थीं, इसलिए उन्होंने तय किया कि वे खुद उन जगहों का दौरा करेंगी।

एक रोमांचक खोज यात्रा

दूसरे दिन जेनवी और टीम के अन्य सदस्य सुबह-सुबह इस खोजी यात्रा पर रवाना हुए। आज उन्हें पहाड़ की ढलान पर मौजूद एक गुफा तक पहुँचना था। कल ही टीम के कुछ लोगों ने इस गुफा तक पहुँचने के लिए एक कच्चा रास्ता बना लिया था। उस समय जब उत्सुकतावश गुफा के भीतर झाँककर देखा था तो कुछ खास नज़र नहीं आया था। लेकिन आज वे लोग पूरी तैयारी के साथ आए थे। रस्सियाँ थीं, इमरजेंसी लाइट थी, ट्रेकिंग के जूते थे, कैमरा था, ज़रूरत पड़ने पर ऑक्सीजन और अन्य उपकरणों की व्यवस्था भी थी।

गुफा वैसे तो बहुत बड़ी नहीं थी। फ्रांस में खोजी गई अन्य गुफाओं की तरह ही लग रही थी। गुफा अन्दर से बड़ी हो सकती है, ऐसा कयास

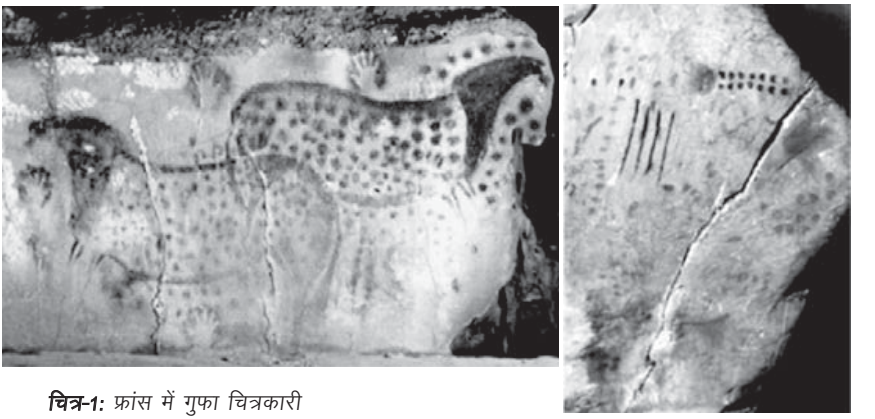

चित्र-1: *फ्रांस में गुफा चित्रकारी*

हमारे देश में मध्यप्रदेश के भीमबेटका और बहुत सारी अन्य जगहों पर ऐसे चित्र खोजे गए हैं। इनके साथ ही, पत्थरों के हथियार-औज़ार और सजीवों के अवशेष भी मिले हैं। इन सब की मदद से हम उस समय के इन्सान के जीवन के बारे में कुछ-कुछ अन्दाज़ा लगा सकते हैं। ये चित्र क्यों बनाए गए होंगे, यह यकीनी तौर पर बता पाना तो मुश्किल है लेकिन पुरातत्व विशेषज्ञों ने अपने-अपने विचार प्रकट किए हैं। कई चित्रों में जीवों की विविध भाव-भंगिमाओं का चित्रण और चित्र बनाने में गतिशीलता को देखते हुए, यकीन हो जाता है कि सम्भवत: ये चित्रण काफी सोच-विचार कर किए गए होंगे।

चित्र-2: *भारत में भीमबेटका शैलाश्रयों में दक्षिण एशिया की कुछ सबसे पुरानी शैल कलाकृतियाँ हैं, जिनका इतिहास पुरापाषाण काल (लगभग 10,000 ईसा पूर्व) का है। लेकिन कुछ आकृतियाँ हाल ही के मध्यकालीन काल की भी हैं।*

लगाया जा रहा था। गुफा की छत गिरने की वजह से भीतर तक जाने का रास्ता बन्द हो गया था। सामने मिट्टी और पत्थरों का ढेर दिख रहा था लेकिन किनारों की तरफ से थोड़ा-सा रास्ता दिखाई दे रहा था।

किनारों के इस सँकरे रास्ते से, किसी तरह जगह बनाते हुए भीतर जाना चाहिए, सभी के मन में ऐसा विचार था। धीरे-धीरे फावड़े से मिट्टी, पत्थर और मलबे को एक तरफ करते हुए लोग अन्दर जाने लगे। लगभग 400 फीट भीतर जाने के बाद वे लोग मुख्य गुफा तक पहुँच सके। यहाँ काफी खुली जगह थी, टॉर्च की रोशनी में गुफा का कोना-कोना बारीकी-से देखा जा सकता था। गुफा की दीवार पर लाल और काले रंग की कुछ आकृतियाँ बनी हुई थीं। कुछ आकृतियाँ धुँधली होने के बाद भी साफ-साफ देखी जा सकती थीं। इन आकृतियों में हिरण और भैंसे जैसे दिखने वाले जीवों के बहुत-से चित्र थे। इनमें से कुछ प्राणियों के शरीर पर गोल बिन्दु बने थे तो कुछ के शरीर पर भाले जैसा कुछ बनाया गया था। सम्भवतः ये शिकार प्रदर्शित करते हुए चित्र हो सकते हैं। टीम के सभी लोग फोटो खींचने और नमूने इकट्ठे करने जैसे कामों में मगन हो गए थे। ये सभी जानकारियाँ पुरातत्व विज्ञान के नज़रिए से काफी महत्वपूर्ण थीं। ऐसी जानकारियों के आधार पर

ही उस दौर के इन्सान की ज़िन्दगी पर रोशनी डाल पाना मुमकिन था।

यह सब देखकर भी जेनवी सन्तुष्ट नहीं हुईं। इससे पहले भी फ्रांस और स्पेन की कुछ गुफाओं में इस तरह के चित्र खोजे जा चुके थे। जेनवी ने इन सबके बारे में सोचना शुरू कर दिया था। यह गुफा किसी समय काफी बड़ी होगी, शायद 100 से 150 लोग आसानी-से यहाँ रह सकते थे। बाद में, कभी यहाँ की छत गिर गई होगी। 'इस गुफा का चप्पा-चप्पा अच्छी तरह देख लेना चाहिए', ऐसा ही कुछ सोचती हुई जेनवी गुफा की दीवार पर बने चित्रों के फोटो लेते हुए आगे बढ़ रही थीं। एक मौका ऐसा भी आया जब सँकरे रास्ते में खड़े रहना भी मुमकिन नहीं था, तब वो रेंगते हुए आगे बढ़ती रहीं, दीवार पर बने चित्रों के फोटोग्राफ लेते हुए।

सिर्फ कुछ जीवों के चित्रों के अध्ययन से जेनवी सन्तुष्ट होने वाली नहीं थीं, इसलिए वे गुफा के और भीतर जा रही थीं। साथ ही, फोटो भी खींचती जा रही थीं। अब उन्हें यह एहसास हो रहा था कि मुख्य गुफा में काफी अन्दर की तरफ जो चित्र बने हैं, उनमें कुछ फर्क हैं। कई चित्रों पर कुछ विशेष चिन्ह बने हुए थे, इन चिन्हों का क्या मतलब हो सकता है, ऐसे खयाल और सवाल उनके मन में आने लगे थे। गुफा के भीतर इन सब पर सोच-विचार करते बैठने का यह उचित समय नहीं था, बल्कि ज़्यादा-से-ज़्यादा फोटो खींचकर जल्दी वापिस लौटना ज़रूरी था।

रेखाओं में रहस्य

इस सफर के बाद जेनवी ने इन सभी फोटोग्राफ का सिलसिलेवार अध्ययन शुरू किया। इन चित्रों का कुछ अर्थ निकाला जाना चाहिए, ऐसा उन्हें महसूस हो रहा था। गुफा चित्र का नाम लेते ही हम सबका ध्यान अक्सर जीवों की आकृतियों पर जाता है। हमारी आँखों के सामने घोड़ा, हिरण, हाथी, भैंसा और उनका शिकार करने वाले इन्सान की आकृतियाँ ही नमुदार होती हैं।

चित्र-3: *उत्तरी स्पेन में एल कैस्टिलो के भित्तिचित्रों में चिन्ह*

चित्र-4: *भित्तिचित्र में चिन्ह, सांताक्रूज़ प्रोविंस, अर्जेंटीना*

दुनियाभर की गुफाओं या शैलाश्रयों में इसी प्रकार के चित्र खोजे गए हैं। इनमें से सबसे पुराने चित्र लगभग 60 हज़ार साल पुराने हैं और कुछ चित्र 30 से 15 हज़ार साल पुराने होंगे, और कुछ केवल डेढ़-दो हज़ार साल पुराने ही।

जेनवी जिस गुफा के भीतर गई थीं, उसमें भी इसी तरह के चित्र थे। लेकिन इन चित्रों के साथ कुछ और भी चिन्ह और निशान थे। ज़्यादातर शोधकर्ताओं ने इन चिन्हों या निशानों को खास महत्व नहीं दिया था। उनका मानना था कि चित्र बनाते समय सजावट के तौर पर पंजों के निशान या ऐसे ही कुछ निशान बनाए गए होंगे। और कहीं रंगों की टूटी रेखाओं का रंग उड़ गया होगा, ऐसा मानकर इन चिन्हों को अनदेखा कर दिया गया।

जेनवी को ऐसा महसूस हो रहा था कि हो-न-हो, ये जानबूझकर बनाए गए निशान हैं। यदि ये निशान हैं तो इनका कोई अर्थ भी होना चाहिए। एक खास बात जिसे जेनवी ने नोट किया था कि कहीं ये निशान या चिन्ह प्राणियों के चित्रों के साथ थे, तो कहीं गुफा के भीतर ऐसी किसी जगह में थे जहाँ प्राणियों के चित्र बेहद कम थे। वहाँ ये निशान बहुतायत में पाए जाते थे।

जेनवी ने फ्रांस की विभिन्न गुफाओं में जहाँ-जहाँ चित्र मिले थे, उन चित्रों को इकट्ठा करके, उनका अध्ययन शुरू किया। फ्रांस में ऐसी 121 गुफाएँ हैं। इनमें लाल, काले और सफेद रंग से बनाए गए चित्र पाए जाते हैं। ज़्यादातर में एकजैसे ही निशान या चिन्ह दिखाई दे रहे थे। जल्द ही जेनवी की समझ में आ गया कि ये निशान महज़ आड़ी-खड़ी लकीरें नहीं हैं, इनमें से ज़्यादातर का सम्बन्ध रेखागणितीय आकारों से है। चौकोन, त्रिकोण, आड़ी लाइन, गुणा का चिन्ह, हैश का चिन्ह, ऐसे ही कुछ विशेष स्वरूप वाले अन्य चिन्ह। यह सजावट के लिए किया गया रेखांकन तो कतई महसूस नहीं हो रहा था।

फ्रांस की ही तरह, यूरोप में स्पेन की कुछ गुफाओं में भी ऐसे ही गुफा-चित्र मिले हैं। इन गुफाओं के फोटोग्राफ का अध्ययन करते हुए लगभग ऐसे ही चिन्ह वहाँ भी दिखाई देने लगे।

जेनवी सोचने लगीं कि चिन्हों की यह परम्परा सिर्फ यूरोप तक सीमित है या दुनिया के अन्य गुफा-चित्रों में भी ऐसा ही कुछ पाया जाता है। क्यों न दुनिया के अन्य गुफा चित्रों का भी अध्ययन किया जाए।

इस सिलसिले में जेनवी ने दुनिया के विभिन्न हिस्सों से बहुत सारे गुफा-चित्रों की तस्वीरें इकट्ठी कीं। ज़्यादातर जगहों पर इन्सान और प्राणियों के चित्र उपलब्ध थे। उसने पाया कि ज़्यादातर फोटोग्राफ में चित्रों के आसपास के अन्य चिन्हों को अनदेखा किया गया था। जेनवी ने

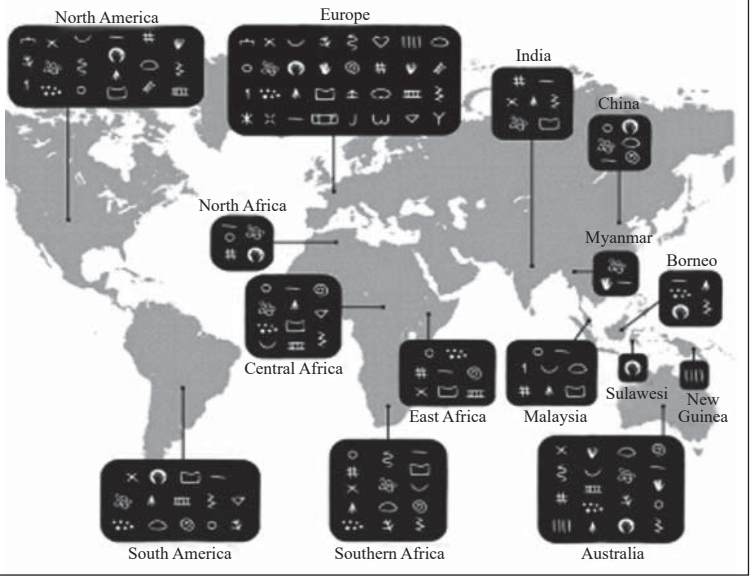

Source: Genevieve Von Petzinger, Andre Leroi - Courhan, David Lewis, Williams, Natalie Franklin

चित्र-4: *यूरोप के गुफा चित्रों में देखे गए पाषाण युग के प्रतीक, दुनिया के अन्य हिस्सों की गुफाओं में भी पाए जाते हैं। इनकी समानताएँ बताती हैं कि ये चिन्ह महज़ बेतरतीब ढंग से बनाई गई आड़ी-तिरछी रेखाएँ नहीं हैं।*

एक बार फिर खोज को आगे बढ़ाया। उन्होंने सैकड़ों की तादाद में पुरातत्वविदों, विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं और पुरातत्व विभागों को खत लिखे, अपील की, निवेदन किया और उनके इलाके में मौजूद गुफा-चित्रों के नए सिरे से फोटो मंगवाकर, उनका अध्ययन किया। धीरे-धीरे उन्हें समझ आया कि अलग-अलग भौगोलिक इलाकों के गुफा-चित्रों में चिन्हों के मामले में काफी हद तक समानता है।

अमूर्त चिन्हों से भाषा तक

ऐसा माना जाता है कि ये सभी गुफा-चित्र आज से लगभग 20 से 30 हज़ार साल पहले बनाए गए थे, उस समय शिकार से खेती के बदलाव का दौर चल रहा था। इसके साथ ही नई-नई प्रथाएँ, त्यौहार इत्यादि सुनिश्चित होने की शुरुआत हो रही थी। शिकार और खेती के तरीकों से सम्बन्धित ज्ञान का संचय भी ज़्यादा-से-ज़्यादा होता चला गया। इस ज्ञान को इकट्ठा करने या सम्प्रेषित करने की ज़रूरत महसूस होने लगी थी। किसी बात को हाव-भाव से या बोलकर बताना तो सम्भव है ही, लेकिन यह तरीका तो इन्सान की मौजूदगी में ही सम्भव है। इस बातचीत को सहेजकर रखना सम्भव नहीं था। किसी बात या जानकारी को लिखित रूप में संचय किया जाना

कहीं ज़्यादा सुविधाजनक है। इस तरीके में हरेक चिन्ह किस लिए इस्तेमाल करना है, यह तय होना चाहिए और यह तय चिन्ह सबको मालूम होने चाहिए। यदि ऐसा होता है तो बिना सीधे सम्पर्क के, मैं क्या कह रहा हूँ, यह दूसरों को भी समझ में आ सकेगा।

जेनवी के रिसर्च की वजह से पुरातत्व विज्ञान में काफी उलट-पुलट हुई। ऐसा माना जाता है कि *होमो सेपियंस* अफ्रीका से निकलकर दुनिया भर में फैलते चले गए। यदि दुनियाभर के गुफा-चित्रों में साम्यता दिखाई देती है तो क्या यह माना जा सकता है कि अफ्रीका से निकलने से पहले ही इन्सान ने चिन्हों को लिखने के तरीके विकसित कर लिए थे? स्पेन में कुछ गुफाएँ काफी पुरानी यानी 64 हज़ार साल तक पुरानी हैं। इनमें उस समय निएंडरथल मानव रहता था। यदि ये निशान या चिन्ह निएंडरथल ने बनाए तो निएंडरथल मानव हमारे अभी तक के अनुमान से कहीं ज़्यादा विकसित थे। क्या *होमो सेपियंस* ने इन चिन्हों को निएंडरथल मानवों से सीखा या लिया होगा? इन सब जटिल सवालों की गहराई में न जाते हुए, हम अपने मूल विषय की ओर लौटते हैं।

सोच की शुरुआती भाषा

एक अनुमान ऐसा भी है कि गुफाओं के ये चित्र किसी घटना या प्रसंग (जैसे बड़े शिकार आदि) का चित्रण हैं। चित्र में मौजूद चौकोन, त्रिकोण निशान तो चित्रण का एक खास तरीका भर है। कुछ पुरातत्वविद मानते हैं कि त्रिकोण (▽) आकार स्त्रियों को दर्शाता है, वहीं { निशान पुरुषों के लिए इस्तेमाल होता होगा। अलबत्ता, चिन्हों के जो भी मायने निकाले जाएँ, यह बात तो तय है कि चित्रों में अमूर्त रेखागणितीय चिन्हों के साथ विचारों या जानकारी को लिखकर रखने की शुरुआत उस दौर में हो गई थी।

आज हमें यह सब आसान और सरल लग सकता है परन्तु इस बात पर गौर कीजिए कि यहाँ एक अमूर्त चिन्ह किसी एक अमूर्त बात को दर्शा रहा है। यह शायद इन्सानी बुद्धि के विकसित होने की अगली सीढ़ी थी। ये शायद सिर्फ रेखागणितीय चिन्ह न होकर, उन्हें शृंखलाबद्ध करके और उनका इस्तेमाल करके बनी सजावट यानी व्यक्त करने के एक तरीके का विकास था। अब इन्सान अमूर्त चिन्हों से अभिव्यक्ति के लिए तैयार था।

...जारी

आमोद कारखानीस: पेशे से कम्प्यूटर इंजीनियर। लेखन एवं चित्रकारी का शौक। मुम्बई में रहते हैं।

मराठी से अनुवाद: माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

सन्दर्भ: https://www.bradshawfoundation.com/geometric_signs/index.php
https://www.hominides.com/articles/the-geometric-signs-an-introduction/

संरक्षण नियमों का रहस्य

नोएथर की अनूठी खोज

अजय शर्मा और विवेक मेहता

दुनिया के बारे में हमारी समझ अक्सर कुछ मूलभूत तथ्यों पर टिकी हुई होती है। इन मूलभूत तथ्यों में से कुछ तो हमें जीवन के अनुभवों से हासिल होते हैं, और कुछ हमारे गुरुओं और किताबों से। इन तथ्यों को अमूमन हम बस मान लेते हैं, इनके अस्तित्व पर कोई सवाल नहीं उठाते। मसलन, हम में से अधिकतर कहाँ ऐसा सोचने बैठते हैं कि जीवन और मरण हमेशा जुड़े हुए क्यों होते हैं; समय एक दिशा में, यानी भविष्य की ओर ही क्यों बहता है; या फिर, दो और दो चार ही क्यों होते हैं?

यह लेख भौतिकशास्त्र के संरक्षण नियमों के बारे में है। ये नियम भी ऐसे ही मौलिक तथ्यों की श्रेणी में आते हैं। अगर आपने विज्ञान पढ़ा या पढ़ाया है तो मुमकिन है कि आप इन नियमों से रू-ब-रू हुए होंगे। विज्ञान शिक्षण में इन नियमों को मूलभूत सत्यों की तरह से ही पेश किया जाता है, व इनके अस्तित्व पर सवाल नहीं उठाए जाते। और तो और, कई भौतिकशास्त्री भी ऐसा ही किया करते हैं। मसलन, भौतिकशास्त्री एंथनी ज़ी (Anthony Zee) अपनी किताब *फियरफुल सिमिट्री: द सर्च फॉर ब्यूटी इन मॉडर्न फिज़िक्स* में लिखते हैं, "वर्षों तक, मैंने यह सवाल नहीं उठाया कि ये (ऊर्जा, रैखिक और कोणीय गति) संरक्षण नियम कहाँ से आए; वे इतने बुनियादी लग रहे थे कि किसी स्पष्टीकरण की ज़रूरत ही नहीं लगी। फिर... यह रहस्योद्घाटन कि ये बुनियादी संरक्षण नियम इस बात पर आधारित हैं कि भौतिकी के लिए कल, आज और कल एकसमान हैं; यहाँ, वहाँ और हर तरफ; पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण। यह समझना मेरे लिए, जैसा कि आइंस्टाइन ने कहा था, एक मूलतः रूहानी तजुर्बा था। यह विशेष रहस्योद्घाटन मेरे कई वर्षों के भौतिकी शोधकार्य के सबसे यादगार अनुभवों में से एक है।"

यह सच है कि हमारे ब्रह्माण्ड में कई संरक्षण नियम सार्वभौमिक तौर पर लागू होते हैं। उनमें से प्रमुख चार नियम हैं।

ऊर्जा संरक्षण नियम

किसी भी सम्पूर्णतः पृथक तंत्र (isolated system) में कुल ऊर्जा समय के साथ नियत यानी संरक्षित रहती है। यानी, ऊर्जा को न तो उत्पन्न और न ही नष्ट किया जा सकता है। उसे

बस, एक रूप से दूसरे में परिवर्तित किया जा सकता है। इस नियम के कई उदाहरण दैनिक जीवन में देखने को मिल जाते हैं। मसलन, जब किसी गेंद को कुछ ऊँचाई से ज़मीन पर गिराया जाता है, तो गिरने से उसकी गुरुत्वाकर्षण स्थितिज ऊर्जा नष्ट होने की बजाय गतिज ऊर्जा में तब्दील हो जाती है। और जब वह गेंद धरती से टकराती है, तो गेंद की गतिज ऊर्जा का कुछ हिस्सा तो ऊष्मीय और ध्वनि ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है, लेकिन बाकी ऊर्जा गेंद को टिप्पा खिलाकर वापिस ऊपर ले आती है।

रेखीय संवेग संरक्षण नियम

अगर कोई बाहरी बल नहीं लग रहा है, तो किसी भी सम्पूर्णतः पृथक तंत्र का कुल रेखीय संवेग संरक्षित बना रहता है। कैरम के खेल में इस नियम को बखूबी देखा जा सकता है। इस गेम में जब स्ट्राइकर किसी गोटी से टकराता है तो वह अपने रेखीय संवेग का कुछ हिस्सा गोटी को दे देता है, जिसकी वजह से गोटी किसी गति से आगे बढ़ने लगती है। कैरम बोर्ड, स्ट्राइकर और गोटी के पूरे तंत्र में अगर घर्षण के असर को नज़रअन्दाज़ कर दिया जाए, तो हम पाएँगे कि इस तंत्र का कुल संवेग टकराने की पूरी प्रक्रिया के दौरान संरक्षित रहता है।

कोणीय संवेग संरक्षण नियम

अगर कोई बाहरी बल आघूर्ण (torque) नहीं लग रहा है, तो किसी भी सम्पूर्णतः पृथक तंत्र का कुल कोणीय संवेग संरक्षित रहता है। आपने इस नियम का उपयोग नर्तकों

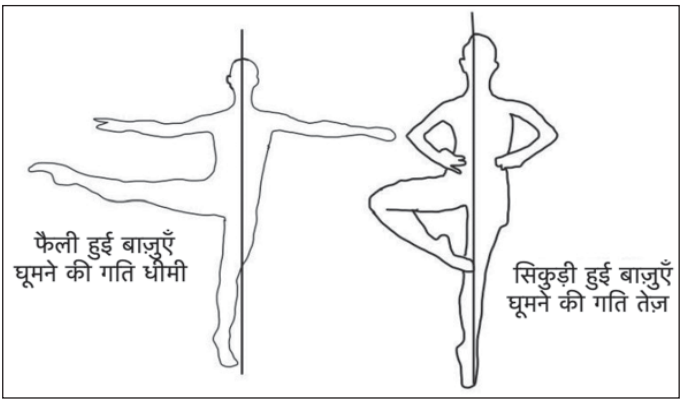

चित्र-1: *बैले नृत्य की दो मुद्राओं का चित्र, जहाँ नर्तक अपनी बाज़ुओं और पैर को फैलाकर व सिकोड़कर अपने चक्करों की गति नियंत्रित कर रहे हैं। चूँकि कोणीय संवेग संरक्षित रहता है, इसलिए बाज़ुओं के फैलाव व घूमने की गति के बीच एक व्युत्क्रम अनुपाती सम्बन्ध होता है।*

को अपने नाच के दौरान करते हुए देखा होगा। कई भारतीय नृत्यों (जैसे कथक, भरतनाट्यम् और भांगड़ा) में नर्तक अक्सर गोल-गोल घूमकर चक्कर लेते हैं। नर्तक अपने चक्करों की गति अपने बाज़ुओं को बढ़ाकर और अन्दर खींचकर नियंत्रित करते हैं (चित्र-1)। क्योंकि कोणीय संवेग संरक्षित रहता है इसलिए बाज़ुओं को फैलाने पर घूमने की गति धीमी और उनको सिकोड़ने पर तेज़ हो जाती है।

विद्युत आवेश संरक्षण नियम

एक सम्पूर्णतः पृथक तंत्र का कुल विद्युत आवेश, यानी उसमें मौजूद धन और ऋण आवेशों का बीजगणितीय योग, हमेशा संरक्षित रहता है। जब आप सूखे बालों में कंघी करते हैं तो आपने गौर किया होगा कि कभी-कभार आपके बाल खड़े हो जाते हैं। भौतिकशास्त्रियों के अनुसार, सूखे बालों में कंघी करते वक्त अक्सर कुछ ऋण आवेशित इलेक्ट्रॉन आपके बालों से उतरकर कंघी पर चढ़ जाते हैं। इससे आपके बालों का कुल आवेश धन और कंघी का कुल आवेश ऋण हो जाता है। क्योंकि समान आवेश वाली वस्तुओं में एक-दूसरे पर विकर्षण बल लगता है, इसलिए बाल एक-दूसरे से दूर रहने की कोशिश में खड़े हो जाते हैं। यहाँ पर गौरतलब बात यह है कि बालों और कंघी को मिलाकर, अगर हम एक तंत्र की परिकल्पना करें तो पाते हैं कि इस तंत्र का कुल विद्युत आवेश कंघी करने की पूरी प्रक्रिया के दौरान संरक्षित रहता है।

आपको यह जानकर शायद ताज्जुब होगा कि 20वीं सदी के दूसरे दशक तक अधिकतर वैज्ञानिकगण भी ऊर्जा, संवेग और आवेश से जुड़े इन संरक्षण नियमों को बुनियादी मानकर, उनसे जुड़े सवाल नहीं पूछते थे। उनमें से किसी ने यह नहीं जानना चाहा कि हमारे ब्रह्माण्ड में ऐसा क्या खास है कि चाहे कुछ हो जाए, ये मात्राएँ सदैव संरक्षित रहती हैं। पर जैसा कि विज्ञान में अक्सर होता है, बड़े बदलाव तब आते हैं जब कुछ लोग बुनियादी तथ्यों पर सवाल उठाने की जुर्रत करते हैं और उनके आधारों को टटोलने की ज़िद पकड़ लेते हैं। तभी हमें पता चलता है कि जिन तथ्यों की बुनियाद पर हमने अपने संसार की समझ बनाई हुई है, वे स्वयं कुछ अन्य अधिक गहरे व मूलभूत सत्यों पर टिके हुए हैं।

असंरक्षित जीवन

संरक्षण नियमों की बुनियादों को पहली बार सफलतापूर्वक टटोलने का श्रेय, जर्मनी की एक ऐसी गणितज्ञ को जाता है जिन्हें आइंस्टाइन विश्व की महानतम महिला गणितज्ञ मानते थे। हम बात कर रहे हैं, गणितज्ञ अमाली एमी नोएथर (Amalie Emmy Noether; 23 मार्च 1882 – 14 अप्रेल

1935) की जिन्होंने बीसवीं सदी के शुरुआती दशकों में संरक्षण नियमों के रहस्य उजागर करने के अलावा गणित के कई अन्य क्षेत्रों में भी बहुत अहम योगदान दिए। यह वह समय था जब यूरोप में, आम तौर पर, महिलाओं को अकादमिक पदों पर नियुक्ति के लिए अयोग्य माना जाता था।

तमाम चुनौतियों के बाद जब नोएथर ने गणित में पीएच.डी. हासिल की, तो कई सालों तक कोई भी विश्वविद्यालय उन्हें प्रोफेसर की नौकरी देने के लिए तैयार ही नहीं था। इस दौरान, करीब सात सालों तक उन्होंने बिना पद और वेतन के काम किया। आखिर 1915 में, उनकी प्रखर योग्यता को पहचानते हुए महान जर्मन गणितज्ञ डेविड हिल्बर्ट और फेलिक्स क्लेन ने उन्हें गॉटिंगन विश्वविद्यालय के गणित विभाग में बतौर गणितज्ञ काम करने का न्यौता दिया। पर गॉटिंगन विश्वविद्यालय के कई प्रोफेसरों ने इस नियुक्ति की मुखालिफत की, जिसके चलते नोएथर को चार साल तक हिल्बर्ट के नाम पर व सहायक बतौर ही बगैर वेतन के शिक्षण और शोध करना पड़ा। 1919 में, नोएथर को आखिरकार एक औपचारिक अकादमिक पद हासिल हुआ, जिसके तहत वे खुद के नाम पर पढ़ा सकती थीं (हालाँकि, यह पद भी शुरुआत में अवैतनिक था)। यह तब सम्भव हुआ जब प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी में उदारवादी विचारों वाली वाइमार रिपब्लिक (Weimar Republic) सत्ता में आई, और जर्मन समाज में महिला सशक्तिकरण के लिए अनुकूल माहौल बना। गौरतलब है कि इसके बावजूद उन्हें कभी भी पूर्ण रूप से प्रोफेसर का पद नहीं दिया गया।

हालाँकि, नाज़ी जर्मनी के दिनों में उनका यह काम भी जाता रहा। नोएथर यहूदी विरासत की थीं, लिहाज़ा, जब 1933 में जर्मनी की नाज़ी हुकूमत ने यहूदी अकादमिकों को यूनिवर्सिटियों से निकालना शुरू किया तो वे जर्मनी छोड़कर अमरीका में जा बसीं। वहाँ उन्होंने पेंसिलवेनिया

चित्र-2: *अमाली एमी नोएथर का चित्र*

के ब्रिन मार कॉलेज में पढ़ाना और प्रिंसटन के मशहूर इंस्टिट्यूट फॉर एडवांस्ड स्टडी में शोध करना शुरू किया। पर दुर्भाग्यवश, दो साल बाद ही, मात्र 53 साल की उम्र में ट्यूमर के एक ऑपरेशन के बाद अचानक अत्यधिक तेज़ बुखार आने की वजह से उनका आकस्मिक निधन हो गया।

मूलभूत सत्य

नोएथर ने दो नए प्रमेयों के ज़रिए यह सिद्ध किया कि ऊर्जा और संवेग (रेखीय और कोणीय, दोनों) के संरक्षण नियमों के लिए हमारे ब्रह्माण्ड के दो अन्य आधारभूत सत्य ज़िम्मेदार हैं।

पहला, हमारा ब्रह्माण्ड कई महत्वपूर्ण मायनों में सममित है। भौतिकी में सममिति (symmetry) एक अहम अवधारणा है। अगर किसी किस्म के बदलाव या रूपान्तरण के दौरान हमारे संसार का कोई भौतिक गुण या मात्रा नहीं बदलती है, तो भौतिकी में हमारे ब्रह्माण्ड को उस गुण या मात्रा के प्रति सममित कहा जाता है। संरक्षण नियमों के सन्दर्भ में, यहाँ यह खुलासा करना उचित होगा कि इस लेख में हम केवल निरन्तर रूपान्तरणों की ही बात कर रहे हैं।

दूसरा मूलभूत सत्य यह है कि ब्रह्माण्ड बहुत 'आलसी' है। यानी, वैज्ञानिकों ने पाया है कि किसी भी क्रिया को अंजाम देने के लिए ब्रह्माण्ड अक्सर सबसे सरल रास्ता चुनता है। यहाँ, सबसे सरल रास्ते से हमारा अभिप्राय ऐसे रास्ते से है जिस पर कुल क्रिया (action)[1] का सम्भावित मान न्यूनतम होता है।[2] मसलन, प्रकाश की किरण एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक पहुँचने के लिए अधिकांशतः वह रास्ता चुनती है जिस पर उसे सबसे कम समय लगता है।[3]

1. *भौतिकी में क्रिया (S) किसी भी तंत्र से जुड़ी एक मात्रा है जिसे लैंग्रेंजियन (L; Langrangian) नामक फलन/फंक्शन का समय के साथ समाकलन करके ज्ञात किया जाता है। लैंग्रेंजियन उस तंत्र की गतिविद्या (dynamics), यानी उस तंत्र में समय के साथ ऊर्जा सम्बन्धी क्या बदलाव हो रहे हैं, की सूचना प्रदान करता है। आम तौर पर लैंग्रेंजियन (L) को गतिज (T) और विभव ऊर्जा (V) में अन्तर के रूप में परिभाषित किया जाता है। यानी, L = T - V और S = ∫_t1^t2 L dt*

2. *यह सत्य न्यूनतम क्रिया (least action) सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। दरअसल, इस सिद्धान्त के अनुसार, किसी भी क्रिया को अंजाम देने के लिए ब्रह्माण्ड ऐसे रास्ते को चुनता है जिस पर कुल क्रिया का मान स्थिर होता है। अधिकतर, कुल क्रिया का यह मान न्यूनतम होता है। पर कुछ परिस्थितियों में यह मान अधिकतम या काठी बिन्दु (saddle point) भी हो सकता है।*

3. *यहाँ ब्रह्माण्ड का 'आलसी' होना व रास्ता 'चुनना' से यह आशय नहीं है कि ब्रह्माण्ड के पास अपनी कोई मर्ज़ी होती है, या सोचने-समझने की शक्ति होती है। इस तरह की मानवीकृत भाषा का इस्तेमाल गूढ़ भौतिकी सिद्धान्तों को सहज-बोध में लाने के लिए एक कोशिश के तौर पर किया जाता है। जिस तरह कोई गेंद धरती की ओर गिरना 'चुनती' नहीं है, उसी तरह ब्रह्माण्ड भी अपनी क्रियाओं के रास्ते 'चुनता' नहीं है। असल में, भौतिकी के नियमों के तहत ब्रह्माण्ड की क्रियाएँ जिस रास्ते होती हैं, वह वही रास्ता होता है जहाँ क्रिया का मान न्यूनतम होता है।*

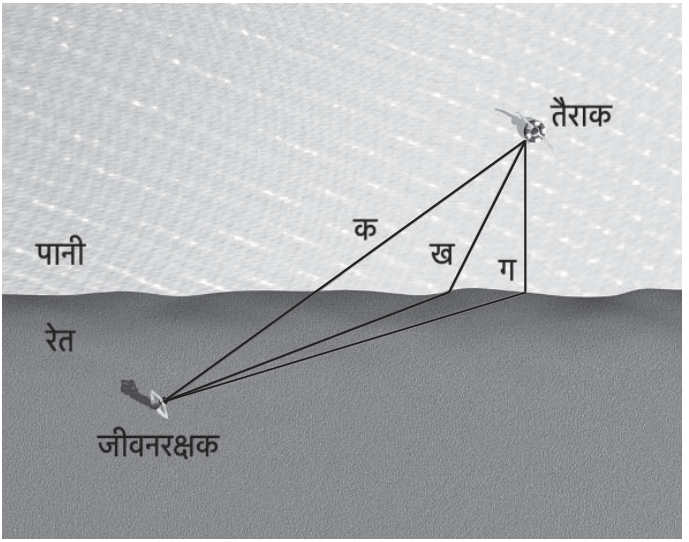

चित्र-3: *इस चित्र में तीन रास्ते (क, ख, ग) दर्शाए गए हैं जो रेत पर खड़ा एक जीवनरक्षक, तैराक को बचाने के लिए अपना सकता है। जीवनरक्षक पानी की तुलना में रेत पर अधिक तेज़ी-से गति कर सकता है। एक सीधी रेखा (क) अपनाने पर बहुत अधिक समय पानी में लगेगा। तैराक के ठीक सामने पहुँचने तक रेत पर रहने (ग) से दूरी बहुत बढ़ जाती है। सबसे किफायती रास्ता (ख) दोनों चरम रास्तों के बीच है। यह उदाहरण ब्रह्माण्ड द्वारा अपनाए जाने वाले न्यूनतम क्रिया सिद्धान्त को भी समझाता है।*

आइए, अब यह समझने का प्रयास करते हैं कि नोएथर इन दो मूलभूत सत्यों के ज़रिए ऊर्जा और संवेग के संरक्षण नियमों की तह में जाने में किस तरह कामयाब हुईं। नोएथर के दो गणितीय प्रमेय इस राज़ को खोलते हैं। पर इन प्रमेयों की गणितीय व्युत्पत्ति थोड़ी जटिल है, और उसे समझने के लिए आपको स्नातक स्तर तक के गणित की समझ बखूबी होनी चाहिए। हालाँकि, यहाँ नोएथर के प्रमेयों की तर्क शृंखला को समझने का प्रयास ज़रूर किया जा सकता है।

ऊर्जा – कल, आज और कल

शुरुआत ऊर्जा संरक्षण नियम से करते हैं। 1915 में, नोएथर ने साबित किया कि यह नियम न्यूनतम क्रिया के सिद्धान्त तथा हमारे ब्रह्माण्ड में समय की सममिति पर आधारित है। समय की सममिति से तात्पर्य इस बात से है कि हमारे ब्रह्माण्ड में किसी भी क्रिया का अंजाम इस बात पर निर्भर नहीं करता कि वह किस वक्त की गई है। यानी, अगर सभी परिस्थितियाँ एकसमान हैं तो आपके-हमारे द्वारा किए गए विज्ञान के किसी

प्रयोग के नतीजे इस बात पर निर्भर नहीं करेंगे कि यह प्रयोग हमने आज किया है या किसी अन्य तारीख पर। मसलन, मान लीजिए आप अभी अपनी रसोई में एक कप पानी उबाल रहे हैं, तो यदि इस वक्त की सभी परिस्थितियाँ ठीक इसी तरह बरकरार रहती हैं, तो चाहे आप अब की बजाय किसी भी समय एक कप पानी उबाल रहे हों, वह ठीक उतने ही ईंधन की खपत के साथ, ठीक उतनी ही देरी में, ठीक उसी तरह उबलेगा। समय की सममिति इस सत्य से जुड़ी है कि हमारे ब्रह्माण्ड में भौतिकी के नियम और सिद्धान्त समय के साथ नहीं बदलते हैं।

अब मान लीजिए कि किसी सम्पूर्णतः पृथक तंत्र में किसी वक्त एक क्रिया होती है। तो न्यूनतम क्रिया के सिद्धान्त की मदद से हम इस क्रिया का कुल सम्भावित मान हासिल कर सकते हैं। नोएथर गणित की मदद से यह साबित कर पाईं कि उस तंत्र में वही क्रिया किसी भी वक्त दोहराने पर यह मान नहीं बदलता है। क्रिया का कुल सम्भावित मान तंत्र की कुल ऊर्जा से जुड़ा है। अगर कुल क्रिया का मान वही रहता है, तो नोएथर द्वारा सिद्ध प्रमेयों के अनुसार तंत्र की कुल ऊर्जा भी संरक्षित रहती है। यानी किसी भी सम्पूर्णतः पृथक तंत्र में कुल ऊर्जा समय के साथ इसलिए संरक्षित रहती है क्योंकि हमारा ब्रह्माण्ड समय के हिसाब से सममित होता है। अगर आप एक ऐसे ब्रह्माण्ड की कल्पना करें जिसमें समय सममिति मौजूद नहीं है, तो आप मानकर चल सकते हैं कि ऐसे ब्रह्माण्ड में ऊर्जा भी संरक्षित नहीं रहेगी।

संवेग – यत्र तत्र सर्वत्र

अब आते हैं, रेखीय संवेग संरक्षण के नियम पर। नोएथर का प्रमेय यह सिद्ध करता है कि यह नियम हमारे ब्रह्माण्ड में मौजूद एक अन्य किस्म की सममिति पर टिका हुआ है – स्थान (space) की सममिति। यह सममिति इस बात से जुड़ी है कि हमारे सभी भौतिक नियम, चाहे वह गुरुत्वाकर्षण का नियम हो या क्वांटम भौतिकी का हाइज़नबर्ग का सिद्धान्त, स्थान पर निर्भर नहीं करते हैं। यानी इस बात का कोई असर नहीं पड़ता कि आपने एक प्रयोग कहाँ किया है। आप चाहें तो प्रयोग भोपाल में करें या दिल्ली में, अगर प्रयोग हू-ब-हू दोहराया जाता है और सभी परिस्थितियाँ एकसमान हैं, तो प्रयोग के नतीजे भी एकसमान होंगे। यही है, स्थान की सममिति।

क्रिया का मान ऊर्जा के अलावा संवेग से भी जुड़ा होता है। चूँकि भौतिकी के नियम स्थान पर निर्भर नहीं करते हैं, नोएथर यह सिद्ध कर पाईं कि किसी भी बन्द तंत्र के स्थान के बदलने पर उसकी क्रिया का मान नहीं बदलता है। अब अगर क्रिया का

मान स्थिर रहता है, तो तंत्र का कुल रेखीय संवेग भी संरक्षित रहता है। यह निष्कर्ष हमें सीधा रेखीय संवेग संरक्षण नियम पर लेकर जाता है। यानी जब तक हम एक ऐसे ब्रह्माण्ड में रह रहे हैं जिसमें भौतिकी के नियम स्थान पर निर्भर नहीं करते हैं, रेखीय संवेग का नियम एक शाश्वत सत्य के रूप में हमारे समक्ष पेश होता रहेगा।

जहाँ संरक्षण, वहाँ सममिति

अब तक शायद आप भाँप गए होंगे कि कोणीय संवेग संरक्षण नियम हमारे ब्रह्माण्ड की इस खासियत से उत्पन्न होता है कि किसी भी प्रयोग या क्रिया का अंजाम इस बात पर निर्भर नहीं करता है कि वह प्रयोग या क्रिया किस दिशा में की गई है। भौतिकी में इस खासियत को 'घूर्णी सममिति' के नाम से नवाज़ा गया है। आगे बढ़ें तो अब हम जानते हैं कि विद्युत आवेश संरक्षण नियम एक बेहद ही मुख्तलिफ (भिन्न) सममिति से उपजता है जिसे गेज (gauge) सममिति कहते हैं। इस सममिति को स्नातक स्तर के गणित की मदद के बिना समझाना बहुत मुश्किल ही नहीं, इस लेख के उद्देश्यों से परे भी होगा। अतः हम इसकी कोशिश भी नहीं करेंगे। अन्य संरक्षण नियम भी, जैसे कि बैरिऑन (baryon) संख्या, लेप्टऑन (lepton) संख्या और कलर चार्ज (color charge) के संरक्षण से जुड़े नियम, हमारे ब्रह्माण्ड की अन्य सममितिओं से उपजते हैं। यानी अब भौतिकशास्त्री मानने लगे हैं कि अगर कोई संरक्षण नियम हमेशा खरा उतर रहा है, तो वह अवश्य ही हमारे ब्रह्माण्ड की किसी सममिति से जन्मा है।

क्यों!?

मुमकिन है कि अब आप यह सोच रहे हों कि संरक्षण नियम, जिन्हें अब तक हम भौतिक संसार की हमारी समझ की बुनियाद मान रहे थे, अगर समरूपताओं पर टिके हुए हैं, तो क्या ये समरूपताएँ भी कुछ अधिक गहरी नींवों पर विराजमान हैं? यानी, क्या ब्रह्माण्ड की सममितिओं से भी गहरे सत्य मौजूद हैं? यह एक वाजिब सवाल है। इसका एक सीधा जवाब तो यह है कि जितना हम इस ब्रह्माण्ड को समझते हैं, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि इस संसार के भौतिक वर्णन के लिए हमें इन सममितिओं से अधिक गहरा सत्य अभी तक हासिल नहीं हो सका है। सम्भव है कि भविष्य में कोई ऐसी खोज हो जिससे यह जवाब बदल जाए। वैसे भी, भौतिकशास्त्री किसी भी सत्य को आखिरी सत्य मानकर कहाँ चुप बैठने वाले हैं!

पर अन्य मायनों में, यह भी कहा जा सकता है कि यह सवाल वैज्ञानिक कम और दार्शनिक ज़्यादा है। यानी, इस सवाल को दार्शनिक जामा

पहनाकर यह भी पूछा जा सकता है कि हम ऐसे ब्रह्माण्ड में क्यों मौजूद हैं जिसमें ये सभी सममितियाँ हैं। सवाल को जब इस तरह से पूछा जाता है, तो अभी तक का सबसे सन्तोषप्रद जवाब एक अन्य सिद्धान्त की ओर इशारा करता है जिसे एंथ्रोपिक प्रिंसिपल (anthropic principle) कहा गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्रह्माण्ड के विभिन्न हिस्सों में भौतिक मापदण्ड भिन्न हो सकते हैं, पर हम ब्रह्माण्ड के एक ऐसे हिस्से में रहते हैं जिसमें भौतिक गुणों के हिसाब से जीवन, खास तौर पर मानव (अवलोकनकर्ता) का जीवन, पनपता है (या, उसके पनपने की स्थितियाँ बनती हैं)। सममितिओं के बगैर संरक्षण नियम सम्भव नहीं हैं; और संरक्षण नियमों के बगैर ब्रह्माण्ड के किसी भी ऐसे हिस्से की कल्पना नहीं की जा सकती जिसमें मानव जीवन को तो जाने ही दें, ग्रह या सितारों जैसे खगोलीय पिण्ड भी जन्म ले सकें। यानी यह भी कहा जा सकता है कि इस संसार में सममितियाँ इसलिए मौजूद हैं कि हम उनके बारे में एक लेख लिख सकें और उसे आप पढ़ सकें। है न यह एक मज़े की बात!

अजय शर्मा: एथेंस, संयुक्त राज्य अमेरिका में यूनिवर्सिटी ऑफ जॉर्जिया के शैक्षणिक सिद्धान्त और अभ्यास विभाग (डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशनल थ्योरी एंड प्रैक्टिस) में प्रोफेसर के तौर पर कार्यरत हैं। उनका मौजूदा शोध शिक्षा पर नवउदारवाद के प्रभाव के सैद्धान्तिक तथा नृवंशविज्ञान सम्बन्धी अन्वेषण पर केन्द्रित है। 1990 के दशक में, एक फुल-टाइम अकादमिक बनने से पहले, वे होशंगाबाद, मध्य प्रदेश में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के साथ काम करते थे।

विवेक कुमार मेहता: आई.आई.टी. कानपुर से मेकेनिकल इंजिनीयरिंग में पीएच.डी. की है एवं तेजपुर विश्वविद्यालय, असम में पढ़ा रहे हैं।

आभार: डॉ. सुव्रत राजू और डॉ. उर्जित याग्निक के सुझावों ने इस लेख को सँवारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके बहुमूल्य मार्गदर्शन के लिए अजय और विवेक हृदय से आभारी हैं।

नया प्रकाशन

बच्चों को लिखना सिखाना कब शुरू किया जाए?
लेखन के दौरान बच्चे किन चुनौतियों का सामना करते हैं?
क्या लेखन शिक्षण के कुछ खास तरीके हो सकते हैं?

ऐसे ही महत्वपूर्ण सवालों को उजागर करने वाली
यह किताब 24 लेखों का एक संकलन है।

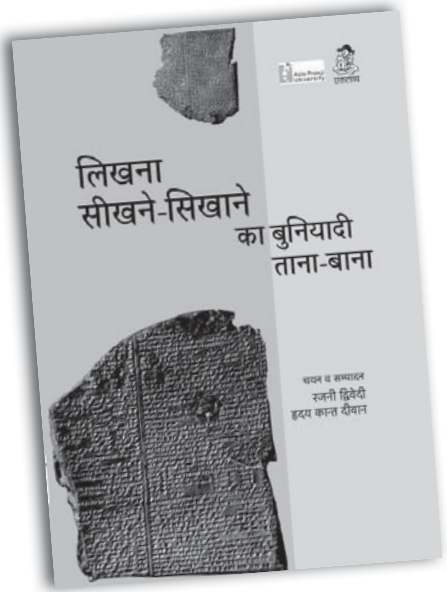

शिक्षकों और भाषा प्रशिक्षकों के लिए अनमोल संसाधन! अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय और *एकलव्य* द्वारा विकसित यह किताब लिखना सिखाने की प्रक्रिया, समस्याएँ और समाधान स्पष्ट करती है। लेखन कौशल सिखाने के व्यावहारिक तरीकों, गतिविधियों और नीतिगत समझ से भरपूर यह किताब हर भाषा शिक्षक के लिए ज़रूरी है।

लिखना सीखने-सिखाने का बुनियादी ताना-बाना

चयन व सम्पादन: रजनी द्विवेदी, हृदय कान्त दीवान

मूल्य: ₹ 240.00

एकलव्य फाउंडेशन

जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (मप्र)

फोनः **+91 755 297 7770-71-72;** ईमेलः **pitara@eklavya.in**

www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

एक पाण्टा नाम

अमित और जयश्री

अमित और जयश्री ने लगभग दो दशकों तक जन-आन्दोलन से जुड़े रहने के अनुभव से यह समझा कि संघर्ष और रचनात्मक प्रयासों को साथ-साथ चलना चाहिए। वे गैर-एनजीओ ढाँचे में काम करने के पक्षधर थे और जन भागीदारी पर आधारित एक वैकल्पिक मॉडल विकसित करना चाहते थे। इसी प्रयास के तहत सन् 1998 में आदिवासी मुक्ति संगठन की मदद से *आधारशिला शिक्षण केन्द्र* की स्थापना की गई। यह केन्द्र मुख्यधारा की शिक्षा प्रणाली के विकल्प के रूप में स्थापित किया गया, जो केवल तथ्य और जानकारी देने तक सीमित थी; जबकि आधारशिला का उद्देश्य बच्चों को जीवन से जोड़ते हुए रचनात्मक और लोकतांत्रिक ढंग से शिक्षा देना था। यह शिक्षण केन्द्र आदिवासी समाज के परिवेश और स्थानीय भाषा को ध्यान में रखते हुए विकसित पाठ्यचर्या पर आधारित था, जिसमें बच्चों और शिक्षकों के जीवन के अनुभव के साथ-साथ जयश्री और अमित के भील-भीलाला आदिवासियों के बीच पन्द्रह वर्षों के जीवन और संघर्षों से प्राप्त अनुभवों का योगदान शामिल था। आधारशिला किसी भी संस्थागत फंडिंग के बिना, समाज, संगठन और मित्रों के सहयोग से बाईस साल तक चला – जो इसकी एक महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक उपलब्धि रही।

आज भी, जब प्राथमिक शिक्षा की सबसे बड़ी चुनौती बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाना और गणित की मूल अवधारणाएँ समझाना है, तब आधारशिला इस बात का उदाहरण प्रस्तुत करता है कि एक आदिवासी आवासीय विद्यालय कैसे बच्चों को जीवन से जोड़कर उच्च स्तरीय शिक्षा दे सकता है।

संदर्भ के अगले कुछ अंकों में हम *आधारशिला शिक्षण केन्द्र* के सफर के बारे में लेख प्रकाशित करेंगे। इस अंक में पढ़िए इस शृंखला का पहला लेख।

आधारशिला लर्निंग सेंटर मध्य-प्रदेश के सेंधवा से 7 किलोमीटर की दूरी पर बसे साकड़ गाँव में स्थित है। इसकी शुरुआत सन् 1998 में हुई।

मुख्य धारा की शिक्षा में आदिवासियों की भाषा, जीवन शैली, संस्कृति और विविध सरोकारों की अनदेखी होती है। इसलिए सोचा, एक ऐसी शिक्षा पद्धति हो जिसमें आदिवासी बच्चे खुद को सहज महसूस करें। उनकी संस्कृति और इतिहास, उनकी पहचान और आत्मसम्मान का बोध बन सके।

आधारशिला लर्निंग सेंटर एक रिहाइशी स्कूल रहा। इसमें बच्चे और शिक्षक एक ही परिसर में रहते थे। आधारशिला में पारम्परिक तरीकों के साथ-साथ प्रोजेक्ट आधारित पढ़ाई भी करवाई जाती थी। खेतों में काम करना, पेड़-पौधों की परवरिश करना, लर्निंग सेंटर की साफ-सफाई, छात्रावास, भोजनालय की व्यवस्थाएँ सम्भालना आदि।

इस स्कूल में सिर्फ किताबी ज्ञान की जगह हाथों से काम करने और आसपास के परिवेश और समाज से सीखने को तरजीह दी जाती थी। मुख्यधारा की पाठ्यपुस्तकों को सीधे पढ़ाने की बजाय आदिवासी समुदाय के सहयोग से उनके पारम्परिक ज्ञान, उनके इतिहास, उनके खेत-खलिहान, वहाँ की वनस्पति, जीवों और जीवन के संघर्ष की सामग्री से पाठ्यक्रम बनाने की कोशिश की गई।

पाठ्यक्रम की सामग्री स्थानीय

भाषा बारेली में बनाई गई। बारेली में बनी सामग्री का उपयोग शुरुआती कक्षाओं में किया जाता था। इसके बाद घर की भाषा के साथ हिन्दी और इंग्लिश भी जुड़ जाते थे। इस लेख में हम आधारशिला में बच्चों को पढ़ना-लिखना किस तरह सिखाया जाता था, इसके बारे में बात कर रहे हैं।

बच्चों को लिखना-पढ़ना सिखाने के बहुत सारे तरीके सुझाए जाते हैं। आधारशिला में, हमने भी तरह-तरह से बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाने के प्रयोग किए। हमारा अनुभव है कि प्रायः सभी तरीकों से बच्चे सीख ही जाते हैं। हमारा यह भी मानना है कि इन तरीकों के अलावा बच्चों का सीखना और भी कई बातों पर निर्भर करता है जैसे कि बच्चे स्कूल या कक्षा में कितने सहज हो पाए हैं, उनकी मानसिक हालत और सीखने का निश्चय, स्कूल का माहौल, कुपोषण एवं स्वास्थ्य आदि।

शुरुआती साल में हमारे पास 32 बच्चे आए थे। इनमें से सबसे छोटा छः-साढ़े छः साल का था और बड़े बच्चे दस-ग्यारह साल के होंगे। हमने यह तय किया कि बच्चों को लिखना सिखाने की शुरुआत बच्चों द्वारा खुद के नाम लिखने से की जाए। एक बार बच्चे अपना नाम लिखना सीख जाएँ, उसके बाद वर्ण या अक्षर की पहचान, अक्षरों की ध्वनियाँ आदि की ओर आसानी-से बढ़ सकते हैं।

पहला दिन

सबसे पहले हमने बच्चों को उनका अपना नाम लिखने के लिए प्रेरित किया। सबकी कॉपियों में उनके नाम लिखकर दे दिए और उनसे एक पाण्टा (पेज) भर के नकल करने के लिए कहा। उन्हें बताया गया कि एक घण्टे में ही आप अपना नाम लिखना सीख जाओगे जो अब तक नहीं सीखे हो। बच्चे बहुत ही फुर्ती से अपने नाम की नकल करने में लग गए। कुछ बच्चे पहली बार ही पेंसिल पकड़ रहे थे। थोड़ी ही देर में बच्चे पाण्टा भर-भर कर दिखाने के लिए लाने लगे। सबको जल्दी होती अपनी उपलब्धि दिखाने की। एक-दूसरे की कॉपियाँ भी देख रहे थे। एक-दो जिन्हें पता चल गया कि वे नहीं लिख पा रहे, थोड़ा शर्माते हुए खड़े थे और कुछ सिर झुकाए बैठे हुए थे। वे शायद बिलकुल भी नहीं लिख पाए थे।

सबकी कॉपियों में सुधार करते-करते और नए पाण्टे पर फिर से उनका नाम लिखकर देने में काफी समय निकल गया और दिमाग भी पक गया था। बच्चे भी जैसे ही देखते हैं कि सब इधर-उधर जा रहे हैं, उठ रहे हैं, तो कुछ तो उनमें होते ही हैं जो अति-उत्तेजित होकर भाग-दौड़, दूसरों को तंग करने या मस्ती करने में लग जाते हैं। कक्षा में जब ऐसा माहौल बनने लगे तो समझ लेना चाहिए कि अब गतिविधियों को बन्द करने का समय आ गया है। कल

सबको अपना-अपना नाम लिखना सीखकर आना है, यह बोलकर हमने भी बच्चों के झुण्ड से बाहर निकलकर राहत की साँस ली।

नाम लिखने के साथ ही, एक और गतिविधि जो पहले दिन से ही शुरू कर दी थी, वो थी आड़ी-खड़ी और तिरछी रेखाएँ बनाना, गोले और डिब्बे बनाना और बहुत-सी ड्रॉइंग बनाना। यह जाना-माना नुस्खा है अँगुलियों की माँसपेशियों को मज़बूत करने का और उन्हें चलाने का। बच्चे चित्र तो बहुत चाव से बनाते थे। हमें आज भी याद है कि अधिकतर बच्चे जीप बनाते थे। शायद इसलिए क्योंकि स्कूल आने के लिए जीप में पहली बार बैठकर आते थे।

आज की सबसे सुखद बात यह थी कि अपना नाम लिखकर दिखाने के लिए बच्चे काफी उत्सुक थे। बार-बार दौड़कर आ रहे थे। कुछ कर लेने की खुशी होगी शायद। सब जोश से भरे थे।

दूसरा दिन

अगले दिन बच्चे जो काम करके लाए थे, उसे देखकर यह एहसास हो रहा था कि बहुत-से बच्चे अपना नाम लिखना सीख गए हैं। बच्चों के हाव-भाव देखकर भी ऐसा महसूस हो रहा था कि उन्हें एक बहुत बड़ी चीज़ हासिल करने का एहसास हो रहा था। आधारशिला में आए कई बच्चे दो-तीन-चार साल सरकारी स्कूल में जाने के बाद आए थे। उनके माँ-बाप का भी, शिक्षा को लेकर एक प्रमुख डायलॉग था - सालों से स्कूल जा रहा है, नाम तक लिखना नहीं सीखा। पहले ही दिन अपना नाम लिख पाना, सचमुच एक उपलब्धि थी।

दूसरे दिन हमने बच्चों से कहा, "आज अपने नाम के साथ कुछ नई गतिविधि करेंगे।" हमने एक बच्चे के नाम 'मजली' के अक्षरों को बोर्ड पर दूर-दूर लिख दिया -

म ज ली

अब हमने बोर्ड पर लिखे अक्षरों पर अँगुली रखते हुए सभी बच्चों से बुलवाया - म ज ली।

"कितने अक्षर हैं मजली के नाम में?

"तीन।"

"तो देखो, तुम्हारे नाम में कितने अक्षर हैं?"

हमें तुरन्त ही कुछ बच्चों की ओर

से जवाब मिलने लगे, "मेरे नाम में तो दो ही हैं - री दू।" "मेरे नाम में तीन हैं - रा दे श।" "मेरे में दो ही हैं - चम पा।"

इसके बाद हमने बच्चों को एक-एक कर ब्लैक बोर्ड पर बुलाया और अपना नाम लिखने को कहा। अधिकतर बच्चे अभी अपना नाम बोर्ड पर लिखने के लिए तैयार नहीं थे। शायद इतना साहस नहीं जुटा पा रहे थे। कुछ बच्चों ने बोर्ड पर नाम लिख भी दिया। जो बच्चे साहस नहीं जुटा पा रहे थे, उनके नाम हमने ही बोर्ड पर लिख दिए।

"कितने अक्षर हैं?"

"तीन।"

"बोलो, अलग-अलग करके।"

क म ल

"चलो, सब इसके नाम के आकड़े (अक्षर) अलग-अलग बोलते हैं।"

फिर उस बच्चे से बाला, "अब तुम बोलो और तुम्हारे पीछे सब बोलेंगे।"

उस बच्चे ने एक-एक आकड़े पर अँगुली रखकर बोला, "कमल" और सबने उसके पीछे दोहराया।

इसे हमने 8-10 बच्चों से करवाया। लेकिन जो बच्चे खुद मर्ज़ी से उठकर आए, सिर्फ उनसे ही करवाया। इसके बाद हमने सभी बच्चों की स्लेट पर उनके नाम के आकड़े अलग-अलग लिखकर दिए और उन्हें उसे बार-बार लिखने के लिए कहा। लिखते समय उन्हें अलग-अलग आकड़े बोलने को भी कहा। कुछ समय बाद अधिकतर

बच्चों ने लिख लिया। शुरू-शुरू में बच्चों ने बड़े-बड़े अक्षर में लिखा इसलिए उनकी स्लेट जल्दी भर जाती थी। स्लेट भरते ही वे बार-बार दिखाने के लिए आ जाते। जब दिखाने आते तो उनसे स्लेट पर लिखे हुए को बोलने के लिए भी कहा जाता था। इस समय नज़ारा देखने लायक होता था – बच्चे भीड़ लगाकर अपनी-अपनी पट्टी आगे करते, और एक-दूसरे को धक्का मारकर आगे आने की कोशिश करते। आज भी कुछ बच्चों ने नहीं लिखा था। वही, कल की तरह शोरगुल, एक-दूसरे को छेड़ना।

हमें समझ आ गया था कि आज का काम हो गया है। बच्चों की हरकतें ही बता देती हैं कि अब हो गया। हमने माहौल को थोड़ा बदलने की नियत से पूछ लिया, "चलो, अब कुछ खेलना है क्या?"

सभी को खेलना था। ज़ोर-से, सामूहिक 'हाँ' की आवाज़ हुई।

इस पर हमने बोला, "तो पहले जो लिखा है, उसे दिखा दो और अपने नाम के आकड़े भी बोलकर बता दो।" फिर से समूह को पंक्तिबद्ध किया। एक-एक बच्चे ने अपने नाम के आकड़े अलग-अलग बोले और जो लिखा था, वो भी दिखाया। लगभग सभी ने ठीक ही बोला था। जिनके नामों में आधे अक्षर थे, उनको दिक्कत हुई जैसे 'चम्पा' को 'च म पा' बोला और लिखा। हम भी यही चाहते थे कि अभी वे इसे 'च म पा' कहें। इस बात को आने वाले दिनों में समझाना पड़ेगा।

जिनके नाम लम्बे थे जैसे सुकलाल, सायमल, वे बाद के दो अक्षर जोड़ देते थे - सु क लाल।

बच्चे खेलने जाने के लिए थोड़े उतावले भी थे। लेकिन तभी खाने की घण्टी बज गई। मतलब, अब खेल छूट गया।

तीस बच्चों के नामों में बहुत-से अक्षर थे। कुछ बिना मात्रा के तो कुछ मात्रा वाले। कुछ आधे अक्षर भी थे। अभी तक बच्चे कई सारी ध्वनियों और अक्षरों से परिचित हो चुके थे।

तीसरा दिन

जैसे ही कक्षा की शुरुआत हुई, हमने बच्चों से पूछा, "कौन-कौन अपना नाम लिखना सीख गया?" काफी सारे बच्चों ने ज़ोर-से आवाज़ करके और हाथ उठाकर अपनी सफलता दर्ज की। बच्चों के जोश से हमारा भी उत्साह बढ़ गया।

हमने बच्चों से कहा कि "आज एक नया काम करते हैं। सबसे पहले पट्टी पर अपने नाम का पहला

आकड़ा बड़ा-बड़ा लिख लो और फिर ढूँढो कि और किस-किस दोस्त के नाम में वह अक्षर आता है।" बच्चों ने अपनी-अपनी पट्टी पर लिखा, फिर थोड़ा हिचकिचाते हुए सब अपनी पट्टियाँ लेकर एक-दूसरे की स्लेट-पट्टी देखने लगे। अपने लिखे आकड़े को दूसरों की पट्टी में लिखी हुई आकृति से मिलाते रहे। कुछ बच्चों को खुद के लिखे आकड़े का एक जोड़ीदार मिला तो किसी ने एक पर न रुकते हुए, बाकी बच्चों की पट्टी देखना भी जारी रखा। ऐसे में कुछ बच्चों को दो जोड़ीदार भी मिले। जिन बच्चों के नाम का पहला अक्षर मात्रा के साथ था, उन्हें परेशानी हो रही थी। जैसे सायमल को डण्डे वाला 'स' नहीं मिल रहा था। 'स' में कुछ और लगा हुआ मिल रहा था।

सुकलाल तो बहुत ही खुश था, उसका तो पूरा नाम ही मिल गया। एक और सुकलाल था इस समूह में।

कुल मिलाकर सभी बच्चे काफी खुश थे। सभी को कोई-न-कोई अक्षर मिल ही गया था। फिर बच्चों से कहा गया कि "अब ऐसा करते हैं कि जिसके नाम में तुम्हारे नाम वाला अक्षर है, उसका नाम भी लिखना सीख लेते हैं।" सभी बच्चे जोड़ियाँ बनाकर एक-दूसरे का नाम लिखने लगे।

खुद की स्लेट पर दोस्तों के नाम लिखने के बाद कुछ बच्चों ने दूसरे बच्चे की स्लेट पर भी अपना नाम लिखकर दिया, और किसी ने जोड़ीदार के नाम को देख-देख कर लिख लिया। यहाँ तक पहुँचते हुए हमें महसूस होने लगा कि आज के लिए पर्याप्त काम हो गया है। फिर बच्चों से कुछ करके लाने की नियत से कहा गया कि "कल अपने दोस्तों के नाम लिखकर लाना है और उनके आकड़ों को अलग-अलग बोलना भी है।"

चौथा दिन

पहले तीन दिनों में हमने जो किया, उसे याद करें तो अपना नाम लिखना, नाम के अक्षरों को पहचानना, नाम के अक्षर और कहाँ हैं – इसे पहचानना, अपने दोस्त का नाम लिखना शामिल था। अब तक हम यह भी समझ गए थे कि अलग-अलग आवाज़ों के लिए अलग-अलग आकड़े (अक्षर/वर्ण) होते हैं। जितनी तरह की भी ध्वनियाँ हम मुँह से निकाल सकते हैं, उनको हम लिख सकते हैं।

इस बात को आगे बढ़ाते हुए

हमने कहा, “अब अपना और दोस्त का नाम लिखना तो सीख गए हो। अब और क्या लिखना चाहते हो?”

“मेरे छोटे भाई का नाम, पेड़ का नाम, जानवरों का नाम...” तरह-तरह की फर्माइश सुनाई देने लगी।

फिलहाल ध्वनियों पर काम जारी रखने की गरज से हमने बच्चों से कहा, “चलो, बारी-बारी से सब अपने नाम के पहले अक्षर को ज़ोर-से बोलेंगे और फिर हम सब उसके साथ बोलेंगे।” उदाहरण के लिए, मदन का पहला अक्षर ‘म’, सुकलाल का ‘सु’, चम्पा का ‘च’ आदि।

म..., सु..., च..., क..., सा..., दी..., री...

सब बच्चे ज़ोर-से चिल्लाकर इन पहले अक्षरों को दोहरा रहे थे।

कुछ मिनट यह गतिविधि करवाने के बाद बच्चों से कहा गया कि “अब किसी भी चीज़ का नाम बोल सकते हो। कुछ भी – इस कमरे की या कमरे के बाहर की।”

किसी ने कहा, “नाहर।”

“चलो, अब नाहर को अलग-अलग तोड़कर बोलते हैं। कौन बोलेगा?” यदि कोई बच्चा खुद से उठकर आ जाता तो ठीक अन्यथा दूसरा तरीका ढूँढ निकाला था – किसी बच्चे को खुद ही बुलवा लेना। लेकिन किसी भी बच्चे को नाम लेकर नहीं उठाना। यदि हम देखते कि कोई बच्चा धीरे-से अपने आप बोल रहा है तो उसे थोड़ी हिम्मत देकर, सबके सामने ज़ोर-से बोलने को कहते थे।

“तो ‘नाहर’ को तोड़कर क्या बना - ना ह र। ‘नाहर’ वाले आकड़े किसी के नाम में हैं क्या?”

बच्चे बोले, “रमेश में ‘र’ है। हरिराम में ‘ह’ है।”

“चलो, और किसी चीज़ का नाम बताओ।”

“सागड़ा।”

“ठीक है, इसे बोलते हैं - सा ग ड़ा। ‘सा’ और किसी चीज़ या किसी बच्चे के नाम में आता है क्या?”

बच्चों ने जवाब दिए, “सालाई, साव, सुकलाल।”

“हाँ, ‘सुकलाल’ में है लेकिन थोड़ा अलग है न? ‘सा’ गड़ा और ‘सु’ कलाल।”

“ ‘ग’ और किस-किस चीज़ के नाम में आता है, सोचकर बताओ।”

बच्चों ने बताया, “गरी, गहूँ गरबा...”

“चलो, अब अपने नाम के पहले अक्षर से कोई और चीज़ का नाम बताओ।”

ऐसी गतिविधियों में कई बार बच्चों के जवाब गलत भी हो सकते हैं। लेकिन सब बच्चे कुछ-न-कुछ बताने

की कोशिश करते हैं। हमारा मानना था कि यदि कोई गलती करता है तब भी उसे टोकना नहीं है। "तुम गलत हो," ऐसी किसी भी टिप्पणी से बचना है। गलत जवाब भी हमें बच्चों के दिमाग में झाँकने का मौका देते हैं।

कई बार बच्चे अपने नाम के पहले अक्षर से शुरू होने वाली चीज़ का नाम नहीं बताते लेकिन जो भी नाम वो लेते हैं, उसमें वह अक्षर ज़रूर आता है। उदाहरण के लिए, एक बच्ची 'मजली' ने अपने नाम के पहले अक्षर से शुरू होने वाली चीज़ का नाम बताया 'नमक'। नमक 'म' से शुरू नहीं होता लेकिन 'नमक' में शब्द के बीच का अक्षर 'म' है।

इस गलती के माध्यम से हम कह सकते हैं कि "हाँ, मजली का पहला अक्षर क्या है? - 'म'।"

"न म क में 'म' तो आता है लेकिन नमक में पहले अक्षर की ध्वनि क्या है - न म क।"

"पहली ध्वनि तो 'न' है।"

"चलो, 'म' से शुरू होने वाली किसी और चीज़ का नाम सोचो।"

धीरे-धीरे बच्चों को समझ आ जाता है। इन गतिविधियों के माध्यम से हम एक लिखे हुए टेढ़े-मेढ़े अक्षर का किसी आवाज़ से सम्बन्ध बना रहे हैं। एक अक्षर के लिए एक आवाज़ और हर तरह की आवाज़ के लिए कोई-न-कोई अक्षर।

पाँचवाँ दिन

एक बार पुराने सभी अभ्यासों को दोहराया गया। पुराने काम को बार-बार करना बहुत ज़रूरी है। बार-बार करने से ही हम किसी काम में अभ्यस्त होते हैं। जैसे-जैसे लिखने में दक्षता बढ़ती जाती है, बच्चे हस्तलेख को सुन्दर बनाने की तरफ भी बढ़ सकते हैं। लेकिन हमने अभी तक इस बात पर ध्यान नहीं दिया था। हम सोचते थे कि निरर्थक लगने वाले कामों को बच्चे पहले न करें। उनके मन में एक उत्साह था, अपना नाम लिखने का। इस काम को सफल बनाना बहुत ज़रूरी था। अपने नाम के साथ-साथ कुछ बच्चों ने अपने एक-दो दोस्तों के नाम लिखना भी सीख लिया था।

'दिया' नाम की एक बच्ची ने शर्माते हुए अपने छोटे भाई का नाम लिखकर दिखाया।

"अच्छा, तो तुम अपने छोटे भाई का नाम लिखना चाहती हो। चलो, लिखकर दे देते हैं।" इस तरह हमें कई बच्चों के छोटे-बड़े भाई-बहनों के बारे में कुछ जानकारी भी मिल गई। आज हम एक बड़ी छलाँग मारने का प्रयोग करना चाहते थे।

....एक ताली, दो ताली, एक ताली, दो ताली, तीन ताली... बच्चों का ध्यान आकर्षित हो गया।

"तो आज किस चीज़ के नाम लिखेंगे?" हमें मिले कई सारे सुझावों

में से हमने पेड़ों के नाम का चुनाव किया।

"चलो, पेड़ों के नाम लिखते हैं।"

'हाँ' तो सब ने जोश में बोल दिया लेकिन फिर किसी ने कहा कि "कैसे लिखेंगे?"

"अरे, तुम सब तो लिखना सीख गए हो। चलो, एक-दो नाम बोर्ड पर लिखते हैं। समझो कि अपन 'सागड़ा' लिखना चाहते हैं। तो पहले 'सागड़ा' को अलग-अलग तोड़कर बोलते हैं। कौन बोलेगा?"

बोर्ड पर बड़े-बड़े अक्षर दूर-दूर लिख दिए।

सा ग ड़ा

"चलो, अब देखते हैं कि 'सा' किसके नाम में है। 'सावन' का 'सा' मिल गया। 'सा' तो लिख लिया। अब बच गया - गड़ा। चलो, अब 'ग' किसके नाम में है, ढूँढते हैं। 'गणपत' में 'ग' मिल गया। 'साग' तो लिख लिया, अब 'ड़ा' किसी के नाम में है क्या?"

हमें किसी के नाम में 'ड़ा' नहीं मिल रहा था। तो मैंने बच्चों से कहा, "मैं बोर्ड पर लिख देता हूँ 'ड़ा'। तो यह बन गया - सा ग ड़ा - सागड़ा।"

"समझ आया न खेल? अब जिस भी पेड़ का नाम लिखना चाहते हो, उसके अक्षर क्लास के बच्चों के नामों में ढूँढो और उनसे जाकर सीख लो।" धीरे-धीरे बच्चे एक-दूसरे के पास जाकर देखने लगे। पूछने भी लगे कि कौन-सा अक्षर आएगा। उन्होंने जो लिखा था, वो हमारे पास आकर दिखाने लगे। कुछ को अपने पेड़ के नाम के लिए अक्षर मिल गए थे। किसी-किसी को नहीं मिल रहे थे। ऐसी स्थिति में हमने उनकी कॉपी में पेड़ के नाम लिख दिए। बच्चे लिखना सीख रहे थे इसलिए ज़्यादातर बच्चों की लिखावट टेढ़ी-मेढ़ी थी। दो-चार बच्चों को छोड़कर।

कुछ देर में तो सभी ने पाँच-छः पेड़ों के नाम लिख लिए थे। "वाह!! हम लिखना सीख गए। देखा, कितना आसान है लिखना। अब इस तरह से तुम किसी भी चीज़ का, जानवर का या अपने घर वालों का नाम लिख सकते हो। लिख सकते हो या नहीं?"

इस तरह से आज का काम पूरा हो गया था। हमने बच्चों से कहा, "कल सब दस-दस पेड़ों के नाम लिखकर लाना। याद है न, कैसे लिखना है? पहले जो भी नाम लिखना है, उसको तोड़कर बोलना है। फिर अलग-अलग आकड़ों को दूसरे बच्चों के नामों में ढूँढकर लिखते जाना है। बस, हो गया काम। चलो, अब कुछ खेलने जाते हैं।"

सार्थक अनुभवों के साथ भाषा सीखना

हो सकता है, बच्चों के नाम में किसी और मात्रा के साथ 'स' हो, जैसे सुरेश में 'सु' या सलोनी में 'स'। यदि वही आवाज़ यानी अक्षर मात्रा के साथ मिल गया तो अच्छा है, लेकिन यदि नहीं मिला तो आप बोर्ड पर लिख दो। अधिक-से-अधिक गड़बड़ यही होगी कि बच्चे गलत मात्रा के साथ लिखेंगे। लिखना सीखने की शुरुआत में यदि बच्चे अभी अक्षर भी सही ढूँढ पा रहे हैं तो भी बड़ी बात होगी। कम-से-कम स्वर अक्षरों (वर्ण) की ध्वनि के साथ उस अक्षर के चित्र का सम्बन्ध बच्चे के दिमाग में तो बन रहा है, यही हम चाहते हैं। पहली बात यही समझाना है कि हर आवाज़ के लिए एक चित्र है।

लिखने-पढ़ने के इस तरीके में सबसे बड़ा फायदा यह है कि बच्चा पहले दिन से ही किसी सार्थक काम में लगा रहता है। यह सार्थकता बच्चे में रुचि और उत्साह बढ़ाती है। वरना साल-दर-साल टीचर बच्चों को 'अ' अनार का, 'आ' आम का बुलवाते रहते हैं लेकिन बच्चों को यह नहीं पता चलता कि इससे क्या होगा। अब उनके सामने कुछ लिखने का लक्ष्य है। उस नाम को लिखने के लिए वे अक्षर सीख रहे हैं। खुद से ढूँढ भी रहे हैं।

सार्थक शब्दों के मार्फत अक्षरों की पहचान, अक्षरों का ध्वनियों से सम्बन्ध और धीरे-धीरे लिखने-पढ़ने की ओर लेकर जाना। यह सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण है कि बच्चों से निरर्थक काम न करवाए जाएँ। उनके सामने कुछ वास्तविक लक्ष्य रखे जाएँ। इससे सम्बन्धित गतिविधियाँ, तरीके, सामग्री विविध हो सकती हैं। हमने पाँच दिन कहा। किसी अन्य शाला में ज़्यादा या कम समय भी लग सकता है। इसलिए सिद्धान्त महत्वपूर्ण है, तरीके आपके अपने हो सकते हैं।

यहाँ, हमारी कक्षा में भी कुछ अनोखा घट रहा था। एक सप्ताह के बाद सभी बच्चों ने अपने-अपने नाम, अलग-अलग रंगों के स्केच पेन से, एक चार्ट पेपर पर लिखे जिसे हमने क्लास में टांग दिया। सब अपना-अपना नाम पहचान लेते थे। कुछ बच्चे अपने दोस्तों के नाम भी पहचान रहे थे। सुवालाल क्लास में सबसे छोटा था। लेकिन वह किसी से पीछे क्यों रहता? उसने मैगी नूडल्स

की तरह का कुछ लिखा था। सब हैरान थे कि यह क्या है। सुवालाल बहुत खुश था कि उसने भी अपने ही हिसाब से अपना नाम चार्ट पर दर्ज़ करवा दिया।

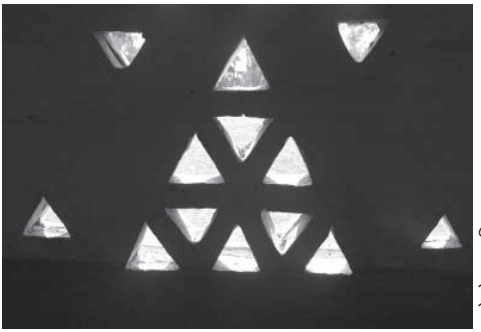

फोटो - अमित

साथ ही, बच्चों ने अपनी इच्छा से दोस्तों के नाम, उनके आसपास के पेड़ों के नाम, जानवरों आदि के नाम भी लिख लिए। वे सीख रहे थे कि किसी भी चीज़ को लिखना बहुत आसान है। केवल नाम में निहित ध्वनियों को पहचानना है और उस आवाज़ से सम्बन्धित अक्षरों को याद रखना है। एक-दूसरे के नामों से अक्षर ढूँढने की गतिविधि भी उन्हें अच्छी लगी।

कुछ दिनों बाद जब हमारे लर्निंग सेंटर में बच्चों के माता-पिता मिलने आए तो हमने बच्चों से अपनी-अपनी कॉपियाँ अपने माँ-पिताजी को दिखाने के लिए कहा। बच्चों के पालक भी हैरान रह गए। कई बच्चे तीन-चार साल तक स्कूल जाने के बाद भी अपना नाम नहीं लिख पा रहे थे। इसके उल्ट, यहाँ एक महीने में वे अपना नाम लिखना और नाम के अक्षरों को पहचानना सीख गए थे। इसकी वजह से पालकों के मन में हमारे स्कूल के बारे में, हमारे पढ़ाने के तरीके के बारे में भरोसा बढ़ गया और गाँवों में स्कूल का अच्छा प्रचार भी हो गया। बच्चों को अनार, आम की जगह 'म' मजली का, 'च' चम्पा का, 'क' कमल का याद हो गया था। और कमल कोई अनदेखा फूल नहीं था, एक बच्चा था जिसे वे रात-दिन देखते थे और छू भी सकते थे।

अमित और जयश्री: लगभग तीन दशकों से पश्चिम मध्य प्रदेश में भील, भीलाला, बारेला आदिवासियों के बीच में रह रहे हैं। साथ ही, खेडूत मज़दूर चेतना संगठ, नर्मदा बचाओ आन्दोलन व पश्चिम भारत प्रवासी मज़दूर संघ के साथ-साथ आदिवासियों के अन्य संघर्षों के साथ भी खड़े हैं। 1998 से आदिवासी बच्चों व युवाओं की शिक्षा के लिए काम कर रहे हैं।

सभी चित्र: सौम्या मैनन: चित्रकार एवं एनिमेशन फिल्मकार। विभिन्न प्रकाशकों के साथ बच्चों की किताबों एवं पत्रिकाओं के लिए चित्र बनाए हैं। बच्चों के साथ काम करना पसन्द करती हैं।

आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल

एक स्कूल जो होना ही चाहिए

अनिल सिंह

साल 2012 में आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल से मैं एक अभिभावक के तौर पर जुड़ा और फिर 2022 तक अलग-अलग ज़िम्मेदारियों के साथ इसका अभिन्न हिस्सा बना रहा। इन 10 सालों में बच्चों और बड़ों के साथ मिलकर खूब सीखना-सिखाना हुआ। मज़ेदारियाँ रहीं, साथियापा रहा और सीखने-सिखाने को लेकर समझदारी भी साथ-साथ बनती रही। यह स्कूल एक प्रयोग ही रहा पर इसकी सीमित पहुँच ने भी एक उम्मीद जगाई कि यह सब किया जाना सम्भव है। यह पूरा सफर हम सबने मिलकर तय किया। अलग-अलग समय पर अलग-अलग लोग जुड़ते और साथ चलते रहे। अब इस पूरे सफर का किस्सा सिलसिलेवार लिखने का ज़िम्मा मैंने लिया है। उसी सिलसिले में यह पहली कड़ी है।

अगर मैं बताऊँ कि यह सब हम चन्द लोग मिलकर कर पाए तो शायद कोई यकीन न करे। यह इसलिए क्योंकि ऐसा चाहने और मानने वाले इस सफर में कम ही मिले। पर यह सब हो भी पाया तो उन्हीं चन्द लोगों की बदौलत जिनका इस पर पक्का यकीन था। जो चाहते थे कि ऐसा हो सके और जो मानते थे कि ऐसा किया जा सकता है।

किस्सा कुछ यूँ है - मार्च 2012 की एक दोपहर यह पैगाम मिला कि 'आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल' एक अभिनव प्रयोग के रूप में शुरू हो रहा है। शुरुआती और उत्साही साथी प्रमोद, स्टेफनी और विजय घर आए और उन्होंने स्कूल की योजना के बारे में बताया।

दबाव से आज़ादी की ओर कदम

मैं इसमें पहली दफा बतौर अभिभावक शामिल हुआ, अपनी 7 साल की बेटी बीहू को लेकर। बीहू फाउण्डेशन स्कूल पार करने के बाद एक बड़े फॉर्मल स्कूल का अनुभव लेकर, उसे छोड़ चुकी थी। स्कूल को

समस्या थी कि वह अपनी कॉपी में बोर्ड से उतारकर जल्दी-जल्दी लिखती नहीं, जबकि बाकी बच्चे लिख चुके होते; ऐसे में बीहू के कारण पूरी कक्षा पिछड़ रही थी और टीचर झुँझला रही थीं। बच्चों के साथ जैसे पूरा स्कूल ही पिछड़ रहा था।

हमने स्कूल जाकर बात की और बीहू पर दबाव न बनाने का आग्रह किया तो अगले ही दिन से टीचर ने बीहू को डेस्क पर हेड डाउन करके बैठे रहने के लिए कहना शुरू कर दिया। या फिर कभी-कभी उसे सिक रूम में भेजा जाने लगा।

बीहू कहती, "जब मैं बीमार नहीं हूँ तो फिर मुझे सिक रूम में क्यों भेजती हैं टीचर?" उसे एक पूरे पेज पर अल्फाबेट को कई बार लिखने से सख्त नफरत थी। उसका कहना था कि जब उसे एबीसीडी लिखना आ गया है तो फिर बार-बार यही लिखने को क्यों कहती हैं टीचर।

कुछ दिन वह जाने में आनाकानी करती और छुट्टी मार लेती, कभी स्कूल से फोन आने पर हम उसे छुट्टी से पहले ले आते। बीहू के सवालों को लेकर टीचर से बात करते और कहते कि हमें कोई जल्दी नहीं है, उसे आराम-से सीखने के मौके दीजिए। पर टीचर बाकी बच्चों के बिगड़ने और अभिभावकों की शिकायतों का हवाला देकर अपना दुखड़ा रोने लगतीं। बहरहाल, दो महीने की इस पूरी कवायद के बाद हमने स्कूल छोड़ दिया, और घर पर ही कुछ जुबानी किस्से-कहानियों, चित्र वाली कहानी-कविता की किताबों, रंग-रोगन, कागज़-पत्तर, मिट्टी और पत्थर के साथ समय बिताने का फैसला किया।

आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल में टायर के झूलों पर आनन्द लेते बच्चे।

सालभर यह सब किया ही था और हमें मज़ा भी खूब आ रहा था कि आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल शुरू हुआ। यह स्कूल ग्यारह बच्चों और छः बड़ों के साथ शुरू हुआ। अशोक के बड़े-बड़े पेड़ों सहित टायर के झूलों और छोटी-छोटी कुर्सियों एवं टेबल वाला स्कूल पहली नज़र में किसी सपनीले संसार-सा लगता था।

थोड़ी-सी खाली जगह मिल जाने पर कितनी कल्पनाएँ साकार होने लगती हैं। एक झोपड़ी, आम, अमरूद आँवला, चीकू, गुड़हल, मीठी नीम और केले के कुछ पेड़, कुछ क्यारियों में बैंगन, मिर्च और टमाटर के पौधे, और बीचों-बीच एक छोटा-सा पक्का पॉण्ड जिसमें भरे हुए पानी में कुछ मछलियाँ थीं और बाद में कमल के पौधे भी लगाए गए। और हाँ, रेत के लिए एक टांका भी था – टांका इसलिए कि रेत बिखर न जाए। उसमें प्लास्टिक की एक सीढ़ी और स्लाइड भी लगी हुई थी। बाद के दिनों में लोहे के दो समानान्तर पाइपों पर चलने वाली दो डिब्बों वाली रेलगाड़ी भी इसमें जुड़ गई थी, जिसमें बच्चे धक्का मारने के बाद बैठ जाते थे और यह थोड़ी ढलान पर अपने आप दौड़ जाती थी। बच्चों के मज़े, खेल और सीखने के लिए लगभग सब कुछ था।

अभिभावक से साथी बनने का सफर

एक अभिभावक के रूप में बाहरी तौर पर सम्मिलित हुआ मैं, कैसे इसका अन्दरूनी हिस्सा बन गया, यह भी कमाल का किस्सा है। मॉर्निंग गैदरिंग में मैं अपनी रुचि से शामिल होता था क्योंकि मुझे गीत-संगीत में रुचि रही। बीहू को स्कूल लाकर मैं मॉर्निंग गैदरिंग में बैठता और सबके साथ गीत गाता। वर्षाजी और विजय को देखता, वे बच्चों के साथ मिलकर ज़बरदस्त माहौल बनाते। फिर एक दिन मैंने स्वेच्छा से ढपली ले ली। संगत देने लगा। और कुछ दिनों बाद मुझे ढोलक भी पकड़ा दी गई। अब तो मेरे मज़े ही मज़े थे। एक घण्टा सुरीली मस्ती में कटता। फिर उसके बाद चाय का वक्त हो जाता और मैं इस लालच में कुछ देर और रुक जाता। चाय पीकर मैं वापस आ जाता।

फिर एक रोज़ बच्चों के एक समूह को कहानी सुनाने के लिए थोड़ी और देर रुक गया। मुझे बहुत मज़ा आया और बच्चों को भी। स्कूल के साथियों ने और खास तौर पर प्रमोद ने कहा कि "क्या कुछ समय स्कूल को दे सकते हो?" मैंने कहा, "सोचकर बताता हूँ।" पर मन पहले से ही तैयार था। भाषा के साथ खेलने में मज़ा आता था, सो मैंने भाषा के साथ काम करने का प्रस्ताव मान लिया। शुरू-शुरू में मैंने दो घण्टे देने का वादा किया। अपनी पहली क्लास बड़े बच्चों के समूह के साथ की और वह मुहावरे पर केन्द्रित थी।

आनन्द निकेतन स्कूल में मॉर्निंग गेदरिंग।

मुहावरे की क्लास

ज़्यादातर स्कूलों में बोलने या बातचीत को आम तौर पर भाषा के एक संसाधन के रूप में नहीं देखा जाता। किसी कक्षा गतिविधि के सन्दर्भ में सबसे मुखातिब होकर बोलने के मौके बच्चों के पास बहुत ही कम और सीमित अर्थों में ही उपलब्ध होते हैं। जैसे कि, किसी प्रश्न का उत्तर देने के लिए निर्धारित और नपे-तुले शब्दों में बोलना, स्कूल नहीं आ पाने, कॉपी-किताब नहीं लाने या गृहकार्य पूरा नहीं कर पाने के कारण बताते समय भय और शर्मिन्दगी का भाव लिए हुए कुछ कहना, या फिर पाठ्यपुस्तक का वाचन करते हुए अक्षरश: बोलना।

मौखिक भाषा यहीं से कुण्ठा और किताबी ढाँचे का शिकार होती चली जाती है। इन पाबन्दियों के चलते, उसका संसार विस्तृत नहीं हो पाता। पढ़ने और लिखने का कौशल सीखने में स्कूल के भीतर इस मौखिक भाषा से कोई मदद नहीं मिल पाती। लिखने-पढ़ने का काम एक अलग ही टापू बन जाता है जिसका बोलचाल की नदी से कोई जुड़ाव ही नहीं।

उस दिन यह तो पता था कि आज मुहावरों पर चर्चा होनी है पर बच्चे यह नहीं सोच पा रहे थे कि कक्षा में आखिर होगा क्या। लिखाया जाएगा या पढ़ाया जाएगा, या फिर कुछ सुनाया जाएगा। कक्षा इस बात से

शुरू हुई कि आज हम मुहावरों के बारे में बातचीत करेंगे और कुछ मुहावरे सीखेंगे। उन्हें बताया कि जब किसी घटना का पूरा बखान न करके थोड़े-से शब्दों में एक कैप्सूल की तरह बोला जाए तो यह कितना मज़ेदार हो सकता है। और कैप्सूल पहले से ही तैयार हों। सिर्फ छाँटना है कि कौन-सा कैप्सूल यहाँ पर फिट बैठेगा। ये कैप्सूल ही मुहावरा है। इतना समझना था कि बच्चों के बीच हँसी के फव्वारे और खुसर-फुसर फैल गई।

मैंने उदाहरण के रूप में पहला मुहावरा लिया 'ऊँट के मुँह में जीरा'। मैंने पूछा, "ऊँट सबने देखा है?" सब अपने-अपने अनुभव बताने लगे। चित्र से लेकर फिल्म और ऊँट की सवारी तक के अनुभव सामने आए। इसके बाद पूछा, "और जीरा?" सबने उस पर भी कोई देर न की।

अब मैंने ब्लैकबोर्ड पर एक बड़ा-सा पूरा ऊँट बनाया और कहा, "इतना बड़ा तो होगा?" इस पर बच्चों ने कहा, "इससे भी बड़ा होता है।" मैंने कहा, "ठीक है, अपने पास इतना ही बड़ा बोर्ड है इसलिए इतना ही बड़ा ऊँट चलेगा।"

इसके बाद अब जीरे की बारी थी। मैंने बोर्ड पर चॉक से एक बिन्दु बनाया और पूछा, "जीरा इतना बड़ा होगा?" उन्होंने कहा, "और छोटा।" मैंने कहा, "ठीक है, पर इससे छोटा दिखेगा नहीं। फिलहाल, अपन इसे ही जीरा मानकर चलते हैं।" मैंने कहा, "अब फिर से एक बार 'ऊँट के मुँह में जीरा' मुहावरे पर नज़र डालो।" मैंने जानबूझकर ऊँट का मुँह बड़ा-ही बनाया था। मैंने कहा, "इसमें दो चीज़ें हैं, ऊँट का मुँह और जीरा।" उनसे पूछा कि ऊँट क्या-क्या खाता है। सबने ढेर सारी चीज़ें गिनाईं। अब मैंने एक किस्सा सुनाया, "एक बार एक ऊँट को बहुत ज़ोरों की भूख लगी थी। रेगिस्तान में दूर-दूर तक कहीं भी कोई पेड़, पत्ती या घास न दिखती थी। ऊँट भूख से बेहाल था। उसके मालिक की थैली में भी कुछ न था। फिर भी उसने एक बार अपनी थैली खँगाली। उसमें जीरे का एक दाना कोने में चिपका हुआ मिल गया। उसने वह जीरा ऊँट को खाने के लिए दिया। ऊँट ने मुँह खोला और मालिक ने जीरा उसके मुँह के अन्दर रख दिया। ऊँट अपनी जीभ से जीरे को टटोलता ही रह गया।"

बच्चों ने कहा, "फिर तो वह भूखा ही रह गया होगा।" "जीरे का दाना तो उसके दाँतों के बीच ही फँसकर रह गया होगा।" किसी ने कहा, "गाल में चिपक गया होगा।" कोई बोला, "जीभ के नीचे ही छुप गया होगा।"

मुझे लगा, बात जम गई है। ऊँट और जीरे का अनुपात समझ पाने के लिए यह पर्याप्त था। ऊँट की ज़रूरत और उपलब्ध सामग्री के बीच सम्बन्ध भी उन्हें समझ आ गया था।

मैंने परिभाषा गढ़ी कि जब ज़्यादा

की ज़रूरत हो और उसकी तुलना में बहुत थोड़ा या नाममात्र को मिले तो ऐसी स्थिति में कहते हैं, यह तो 'ऊँट के मुँह में जीरे' वाली बात हुई।

बच्चों को तो मज़ा ही आ गया। उन्हें परिस्थिति और उसका कैप्सूली-करण समझ आ गया था। मैंने कहा, "अब सब एक किस्सा सुनाएँ जिसमें ऊँट के मुँह में जीरा जैसी बात हो।" दो बच्चों ने तो हूबहू यही किस्सा दोहरा दिया। तीन बच्चों ने ऊँट की जगह हाथी और घोड़ा रखे। दो बच्चों ने उसे खुद के साथ जोड़ा और भूख में एक टॉफी या बेर खाने की स्थिति बताई।

मुहावरे, किस्से और अभिनय

अगले चरण में तय हुआ कि अब सब अपनी-अपनी परिस्थिति को अभिनय द्वारा प्रस्तुत करें। यह तो और भी मज़ेदार रहा। मैंने कहा, "आज के लिए इतना काफी है। कल हम दो नए मुहावरे लेंगे और उन पर किस्से बनाएँगे और फिर उन्हें अभिनय द्वारा प्रस्तुत करेंगे।"

अब तो मुहावरे की कक्षा हिट हो गई थी। बच्चों ने कहा, "दो पीरियड इसी पर बात करेंगे।" ऐसा ही हुआ। इस बार हमने दो नए मुहावरे, 'छत्तीस का आँकड़ा' और 'आ बैल मुझे मार' लिए।

सबसे पहले मैंने बोर्ड पर 36 लिखा। मैंने पूछा, "यह क्या है?" सब बोले, "थर्टी सिक्स - छत्तीस।" मैंने कहा, "अगर ये दो इन्सान हों तो? तुम्हें क्या दिखता है?" किसी ने कहा, "ये अलग-अलग करवट लेकर सो रहे हैं।" मैंने कहा, "अगर ये खड़े हों तो?" एक ने कहा, "ये अलग-अलग चीज़ों को देख रहे हैं।" दूसरे ने कहा, "अलग-अलग तरफ मुँह किए हुए हैं।" मैंने कहा, "अगर ये एक-दूसरे से नाराज़ हों तो?" तब एक ने कहा, "ये एक-दूसरे का चेहरा नहीं देखना चाहते। आपस में बात नहीं करना चाहते। पीठ लड़ाकर खड़े हैं।" वगैरह, वगैरह।

मैंने किस्सा सुनाया – एक बार कक्षा में एक दोस्त से मेरा झगड़ा हो गया। उसकी कुछ आदतें मुझे बिलकुल पसन्द नहीं थीं। वह बहुत शरारत करता था, मैं चुपचाप बैठता था फिर भी मेरे नाम से शिकायत पहुँच जाती थी। वह आधी छुट्टी में बाहर सड़क पर घूमता था, मैं अपनी कॉपी लिखता रहता था। वह अन्य साथियों से मेरी बुराई करता और मेरी खिल्ली भी उड़ाता। बाद में हम लोग अलग-अलग बैठने लगे। जब हमें साथ बुलाया जाता तो हम एक-दूसरे की तरफ पीठ करके खड़े हो जाते। टीचर ने कहा, "पहले तो इनमें याराना था, अब '36 का आँकड़ा' है।"

एक बच्ची उठी और उसने दो कुर्सियों को उठाकर एक-दूसरे की विपरीत दिशा में इस प्रकार सटाकर रखा, मानो वे एक-दूसरे से बात नहीं

बच्चों के साथ किस्सों और मुहावरों पर बातचीत।

करना चाहती हों। उनकी पीठ एक-दूसरे की तरफ और मुँह अलग-अलग दिशाओं में।

बच्चों को समझते देर न लगी कि '36 के आँकड़े' में भी स्थिति बिलकुल यही है। ये दो इन्सान हैं। इनके बीच अनबन है। इनकी आपस में नहीं पटती। ये एक-दूसरे से बिलकुल विपरीत हैं। मतलब '36 का आँकड़ा'। अगले ही पल दो बच्चियाँ उन कुर्सियों पर जा बैठीं। सब चिल्लाने लगे, "छत्तीस का आँकड़ा, छत्तीस का आँकड़ा।"

अब सबको अपने-अपने किस्से बनाने थे। सबने परिस्थितियाँ गढ़ीं और उन्हें प्रस्तुत किया।

अब बारी थी, 'आ बैल मुझे मार' की। मैंने फिर एक किस्सा सुनाया – एक व्यक्ति चला जा रहा था और एक बैल चुपचाप घास चर रहा था। उसने देखा कि एक अन्य व्यक्ति बैल को परेशान कर रहा है और बार-बार उसके सीगों से खिलवाड़ कर रहा है। पहले वाले व्यक्ति ने उसे मना भी किया कि "अरे, वो बैल है, सींग मार देगा।" पर दूसरा व्यक्ति न माना। वह लगातार छेड़छाड़ करता रहा। आखिरकार, खीझकर बैल ने उसे सींग मार ही दिए। व्यक्ति गिर पड़ा और उसे काफी चोट आई। इस पर पहले व्यक्ति ने कहा, यह तो वही बात हुई कि 'आ बैल मुझे मार'। ज़ख्मी व्यक्ति को उठाते हुए उसने कहा, "तुमने ही बैल को मारने के लिए उकसाया, अब भुगतो।"

"और कुछ इस तरह बना मुहावरा 'आ बैल मुझे मार'।" मैंने कहा, "सभी इस पर एक-एक किस्सा बनाएँ और सुनाएँ।" इसके बाद दो समूह बना

दिए गए और काम यही कि दोनों समूह इस मुहावरे को अलग-अलग तरह से अभिनय द्वारा प्रस्तुत करें।

बच्चों को इस गतिविधि में बहुत मज़ा आया। एक समूह ने तो बैल ही बनकर दिखाया पर दूसरे समूह ने बैल की जगह एक गुस्सैल पहलवान का अभिनय किया। इसके बाद तो 'दिन में तारे नज़र आना', 'हवाई किले बनाना', 'करेला वो भी नीम चढ़ा', 'एक पन्थ दो काज', 'तिल का ताड़ बनाना', 'हाथ पर हाथ धरे बैठना' जैसे मुहावरों में बच्चों ने कमाल की कल्पनाशीलता और रचनात्मकता दिखाई। किस्सा सुनाते ही उन्हें मुहावरे की परिस्थिति समझते देर न लगती और झट-से वे इसके लिए एक उपयुक्त किस्सा रच देते और फिर समूह में अभिनय द्वारा प्रस्तुत भी कर देते।

'हवाई किले बनाना' में शेखचिल्ली का किस्सा उन्हें बहुत मज़ेदार लगा। मैंने खुद बचपन में दादी से यह कहानी सुन रखी थी कि कैसे शेखचिल्ली रास्ते पर चलते हुए, आने वाले समय की कल्पना करता रहता और भूल जाता कि वह क्या काम कर रहा है, या कहाँ किस काम से जा रहा है। ऐसे ही एक रोज़ उसने कुछ सोचते-सोचते सिर पर रखा घी का कनस्तर ज़मीन पर पटक दिया था।

समूह में जब बच्चों ने अपने किस्से गढ़े और अभिनय द्वारा उन्हें प्रस्तुत किया तो वह नज़ारा देखने लायक था। सटीक परिकल्पना, असरदार संवाद और समन्वय का ज़बरदस्त उदाहरण रहीं, उनकी ये प्रस्तुतियाँ।

मुहावरों से दोस्ती

मुहावरों के इन सत्रों के बाद तो 'तिल का ताड़ बनाना', 'एक पन्थ दो काज' और 'हवाई किले बनाना' के प्रयोग बच्चों की बातों में कई रोज़ तक सहज ही सुनाई देते रहे। जब एक छोटी बच्ची को दरवाज़े की मामूली खरोंच लगी और सब ने उसे घेर लिया, मरहम पट्टी का डिब्बा ले आए, किसी ने आकर टीचर को बताया कि बहुत चोट लगी है, तो इस पर बड़ी उम्र समूह के एक बच्चे ने कहा, "ये लोग फालतू में 'तिल का ताड़' बना रहे हैं, कोई चोट-वोट नहीं लगी है।"

जब हम 'करेला वो भी नीम चढ़ा' मुहावरे की बात कर रहे थे तो कुछ परिस्थितियों के उदाहरण के बाद मैं नीम की वजह से करेले की कड़वाहट बढ़ जाने की बात पर आकर रुक गया। मुझे इसके आगे का रास्ता न सूझा सिवाय इसके कि इस तरह की स्थिति में यह मुहावरा सटीक बैठता है। एक बच्ची ने पूछा कि "अगर करेले की बेल अमरूद या गन्ने के पेड़ पर चढ़ जाए तब क्या करेले में मिठास आ जाएगी?" कुछ और बच्चों ने भी मेरी तरफ यही चुनौती उछाली। मेरे लिए यह एक कठिन प्रश्न था

लेकिन मैं यह जानता था कि किसी बात का उत्तर नहीं जानना, कोई कठिनाई की बात नहीं। मैंने कहा, "यह तो करके देखने वाली बात है। हम विज्ञान के शिक्षक से इस बात को समझेंगे और यह प्रयोग भी करके देखेंगे।" दो-तीन दिन बाद बच्चों ने करेले के बीज बोये। सप्ताहभर में कुछ अंकुर भी फूटे लेकिन बेल कुछ खास बढ़ी नहीं। फिर बच्चे इस बात को भूल भी गए और दूसरे कामों में जुट गए।

मुहावरा अब उनके लिए कोई हौवा न था बल्कि उसमें मज़ेदारी थी, रचनात्मकता थी और भाषा का खिलन्दड़पन था। और इस तरह मैं मुहावरे की एक क्लास के रास्ते, आनन्द निकेतन डेमोक्रैटिक स्कूल में हिन्दी भाषा का फैसीलिटेटर बन गया। फिर तो किस्से-कहानियों का दौर और बच्चों से दोस्ती का सिलसिला चलता रहा।

स्कूल के बारे में अगला किस्सा अगली किश्त में।

अनिल सिंह: पिछले 25 वर्षों से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हैं। विगत डेढ़ दशक से प्राथमिक शिक्षा उनका प्रमुख कार्य रहा है। भोपाल के आनंद निकेतन डेमोक्रैटिक स्कूल की संकल्पना के दिनों से वे जुड़े रहे और उसका संचालन किया। वर्तमान में, टाटा ट्रस्ट के पराग इनिशिएटिव से जुड़कर बाल साहित्य और पुस्तक संवर्धन का काम कर रहे हैं।

सभी फोटो: अनिल सिंह।

आनन्द निकेतन स्कूल में खेलते बच्चे।

पढ़ाई में कैसे मददगार हैं चित्र?

राजेन्द्र देशमुख

पिछले कुछ वर्षों में विविध प्रोजेक्ट में काम करते हुए मुझे समुदाय व शिक्षकों को करीब से जानने और समझने का मौका लगातार मिलता रहा। साथ ही, बच्चों के सीखने की प्रक्रिया को लेकर लोगों की अलग-अलग मान्यताओं को भी देख पाया। आम तौर पर माता-पिता की मंशा होती है कि बच्चे जल्दी-से पढ़ना-लिखना सीख जाएँ। बच्चों से बहुत अधिक अपेक्षाएँ होती हैं। सुबह-सुबह बच्चे ट्यूशन जाएँ, फिर दिन में भारी-भरकम बैग लेकर स्कूल जाएँ, शाम को एक बार फिर ट्यूशन। ऐसी कठिन दिनचर्या और अपेक्षाओं के बोझ से बच्चों की चिन्तन-मनन की प्रक्रिया बाधित हो सकती है। जबकि बच्चों के लिए ज़रूरी है कि उनकी भावनाओं, कल्पनाओं, विचारों एवं अभिव्यक्ति की उड़ान को जगह मिले और उन्हें सोचने व तार्किक चिन्तन के अवसर उपलब्ध करवाए जाएँ। सीखने की प्रक्रिया निरन्तर और स्वतः चलती रहती है। हम हर समय कुछ-न-कुछ सीख रहे होते हैं – एक-दूसरे से भी एवं अपने आसपास के माहौल से भी।

सीखने को उद्देश्यपूर्ण बनाना

वर्तमान में जिस प्रोजेक्ट का मैं हिस्सा हूँ, उसके तहत हमें बच्चों को स्कूल और समुदाय के बीच सीखने के मौके उपलब्ध करवाने हैं। इसमें हम आंगनवाड़ी और समुदाय समर्थित शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्रों पर विविध गतिविधियों द्वारा बच्चों के भाषा एवं गणित सीखने को आसान तथा उद्देश्यपूर्ण बनाने की कोशिश करते हैं।

हमारे काम का ढाँचा इस प्रकार बना है कि शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र के साथ पालकों और समुदाय का जुड़ाव लगातार बना रहे। समुदाय में यह भावना बनी रहे कि केन्द्र उनका है। इसके लिए हम हर महीने पालकों के साथ बैठक करते हैं। इस बैठक में केन्द्र संचालन में आ रही बाधाओं, बच्चों के साथ की जाने वाली गतिविधियों व बच्चों की प्रगति के बारे में जानकारी दी जाती है। इसी तरह पालक भी अपनी बात खुलकर कह पाते हैं। कई बार उनकी बातों से यह भी पता चलता है कि उनकी केन्द्र से क्या अपेक्षाएँ हैं। जहाँ केन्द्र पर बच्चों की नियमितता हमारी ओर से एक सदाबहार मुद्दा होता है, वहीं पालकों की ओर से बच्चों द्वारा धाराप्रवाह न पढ़ पाने या गणित न आने का मुद्दा रखा जाता है। कई

बार पालक हमारी गतिविधियों के औचित्य पर भी सवाल उठाते थे।

ऐसा ही एक वाकया होशंगाबाद ज़िले में मरोड़ा गाँव के केसला विकासखण्ड का है। हमारे संचालक ने बताया कि कई पालकों का कहना है कि केन्द्र पर पढ़ाने से ज़्यादा तो बच्चों से चित्रकारी करवाई जाती है। "आपके केन्द्रों पर बच्चों से केवल चित्र ही बनवाते हैं। चित्र बनाने से बच्चों को क्या ही मिलेगा, कौन-से पेंटर बन जाएँगे। चित्र बनाने से तो केवल बच्चों का टाइम पास होता है। इससे अच्छा तो आप बच्चों को कुछ पढ़ने-लिखने या याद करने को दें।" संचालक का कहना था कि बच्चों को चित्र बनाना अच्छा लगता है और वे उत्साह के साथ इसमें हिस्सेदारी करते हैं।

पालकों के साथ बातचीत

यह एक गम्भीर मुद्दा था। दरअसल, यह हमारी सोच पर निर्भर करता है कि हम चित्रकारी को किस नज़रिए से देखते हैं। क्या सिर्फ पेड़-पौधे, जानवर आदि के चित्र बनाकर, उनमें रंग भरना ही चित्रकारी है? चित्रकारी से तो बच्चों में तार्किक, मानसिक, काल्पनिक क्षमता के साथ-साथ आनुपातिक चित्रण और हस्तकौशल की क्षमता का विकास भी होता है। इन सब मुद्दों पर संचालक साथियों से हमारी बातचीत हुई और यह तय हुआ कि मरोड़ा में पालकों के साथ एक बैठक करके, इस मुद्दे पर कुछ बातचीत की जाए।

• पहली गतिविधि

जब हम पालक-बैठक करने पहुँचे तो बातचीत खेत-खलिहान से शुरू होकर बच्चों की पढ़ाई की ओर मुड़ गई। इसके बाद हमने अपनी योजना अनुसार सभी पालकों को एक-एक कोरा कागज़ और मोम कलर दे दिए।

हमने पालकों से कहा कि "आप सभी ने अपने बचपन में किसी-न-किसी तरह के चित्र बनाए होंगे। आज हम उस पल को याद करते हुए कागज़ पर फिर से अपनी पसन्द का चित्र बनाएँगे और उसमें रंग भी भरेंगे।" कुछ देर सभी पालक एक-दूसरे को देखकर मुस्कुराते रहे। फिर उन्होंने अपने-अपने कोरे कागज़ पर कुछ बनाना शुरू किया। इसके लिए उन्हें आधे घण्टे का समय दिया गया था।

जब सभी ने चित्र बना लिए तो उनसे चित्रों में रंग भरने के लिए कहा गया। रंग भरने के बाद सभी पालकों ने अपने-अपने चित्र बीच गोले में रख दिए। सभी पालकों ने एक-दूसरे के चित्रों की बहुत सराहना की।

• दूसरी गतिविधि

अगली गतिविधि के निर्देश में हमने कहा कि "इन चित्रों में से किसी भी एक के बारे में 4-5 वाक्य बोलिए। चित्र को देखकर जो भी मन में आए, उसे बोल सकते हैं।"

पहला पालक - 'घर' पर

हम घर में रहते हैं। घर ईंटा, पत्थर, लकड़ी, मिट्टी से बनाया जाता है। घर में कलर भी करते हैं और सजाते भी हैं।

दूसरा पालक - 'गाय' पर

गाय के चार पैर होते हैं। गाय घास खाती है। गाय की पूजा भी करते हैं। उसके गोबर से उपले बनाते हैं जो कि जलाने में काम आते हैं।

इसी प्रकार से अन्य पालकों ने भी अलग-अलग चित्रों के बारे में बताया।

• तीसरी गतिविधि

अगली गतिविधि के लिए हमने सभी पालकों से चार समूहों में बँटने के लिए कहा। पालकों द्वारा बनाए गए चित्रों में से चार चित्रों को इस गतिविधि के लिए चुना और फिर सभी समूहों से कहा कि इन चित्रों को देखकर प्रत्येक समूह को एक-एक कहानी बनानी है। लेकिन शर्त यह है कि उस कहानी में इन चारों चित्रों का विवरण होना चाहिए।

इस प्रक्रिया के दौरान ज़्यादातर पालक खुलकर एक-दूसरे से बातचीत करते नज़र आए, जो हम सबके लिए एक अच्छा एहसास था।

पालकों का फीडबैक

इन गतिविधियों के समाप्त होने के

बाद हमने पालकों से सवाल किया कि इस पूरी प्रक्रिया में उन्हें क्या महसूस हुआ। तब पालकों ने बताया कि "जब हम चित्र बना रहे थे तो हमें सोचना पड़ रहा था कि क्या बनाएँ। थोड़ा डर भी था कि चित्र कैसा बनेगा। कुछ बेडौल बन गया तो बाकी लोग हमारे चित्र पर हँस न दें।" एक दीदी ने कहा, "मुझे मन में लग रहा था कि मेरा चित्र सबसे अच्छा बने।" कुछ पालकों ने कहा कि "जब वे एक-दूसरे के चित्रों की तारीफ कर रहे थे तो बहुत अच्छा लग रहा था।" "चित्रों पर बोलते समय हमारे परिवेश से जुड़ी चीज़ें होने से हम खुलकर बोल पा रहे थे।"

इसके बाद हमने पालकों के सामने एक सवाल रखा, "अब आपको क्या लगता है, चित्र बनाने जैसी गतिविधि बच्चों के साथ करनी चाहिए या नहीं?" सभी पालकों ने एकसाथ 'हाँ' कहते हुए अपनी सहमति दर्ज करवाई।

हमने पालकों से यह भी साझा किया कि इस तरह की गतिविधि के दौरान आपकी तरह बच्चे भी एक-दूसरे के चित्र देखकर खुश होते हैं। जब वे चित्रों के बारे में बोल रहे होते हैं तब अपने विचार अभिव्यक्त करते हैं, जिससे उनकी झिझक दूर होती है। वे अपने परिवेशीय अनुभवों को शामिल करते हैं। अलग-अलग रंगों का इस्तेमाल करते हैं, चित्रों में गणितीय अनुपात बनाए रखने का प्रयास करते हैं। बच्चे खुलकर अपनी बात रख पाते हैं, चिन्तन करते हैं जिस वजह से उनका आत्मविश्वास बढ़ता है। इस तरह बच्चों के साथ सीखने-सिखाने के मौके सरल होते जाते हैं।

पालकों को यह समझाने का प्रयास भी किया गया कि इस तरह की गतिविधियाँ बच्चों का भाषाई कौशल बेहतर करने में मदद करती हैं। साथ ही, शिक्षा नीति में भी यह बताया गया है कि बच्चों के सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में सहज व भय

पालकों द्वारा बनाए गए चित्र जिन्हें कहानी बनाने के लिए चुना गया था।

बच्चों की पढ़ाई में समुदाय या पालकों की भूमिका

बच्चे सिर्फ शाला अवधि के दौरान ही नहीं सीखते बल्कि वे अपने परिवार और समुदाय के साथ जो समय बिताते हैं, उस दौरान भी सीखते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और एन.सी.एफ. 2005 एवं 2020 में भी बच्चों की पढ़ाई में या सीखने की यात्रा में पालकों व समुदाय की भूमिका को रेखांकित किया गया है।

एक शिक्षक के रूप में शाला में पढ़ाते हुए एक ढाँचागत व्यवस्था के तहत आपका बच्चों के घर आना-जाना होता है, ग्राम सभा के सदस्यों से मुलाकात होती है, और स्कूल मैनेजमेंट कमेटी जैसे फोरम शाला और पालकों को जुड़ने के मौके देते हैं।

जब गैर-लाभकारी सामाजिक संगठन गाँवों में शैक्षिक केन्द्रों का संचालन करते हुए समुदाय के साथ काम करते हैं तो शाला के पारम्परिक फोरम के अलावा पालकों के साथ सतत सम्पर्क के और भी मौके मिलने लगते हैं।

आम तौर पर इन शैक्षिक केन्द्रों के संचालक पालकों और समुदाय के साथ काफी करीबी सम्पर्क बनाकर रखते हैं। पालकों से बातचीत के दौरान जितना ज़ोर बच्चे की नियमितता पर होता है, उतना ही ज़ोर निम्नलिखित बिन्दुओं पर भी दिया जाता है –

- पालक प्रतिदिन बच्चों के साथ समय बिताने को अपनी प्राथमिकता में शामिल करें। बच्चों के साथ बातचीत करें, बच्चों की बातों को धैर्यपूर्वक सुनें, उन्हें अधिक-से-अधिक बोलने के मौके दें। बच्चों को कहानी, कविता, किस्सा आदि सुनाएँ। कुछ अन्य गतिविधियाँ भी करवाएँ। पालक भी अपने कार्यस्थल के अनुभव बच्चों को बता सकते हैं।
- सेंटर से मिली सामग्री को देखें, खुद भी पढ़ सकते हैं या करके देख सकते हैं। सेंटर पर जो पढ़ाया-सिखाया जाता है, उसके पीछे के अकादमिक पहलुओं को भी समझने का प्रयास करना चाहिए।
- घर पर यथासम्भव भयमुक्त माहौल बनाकर रखें।
- यदि पालकों का कोई वॉट्सएप ग्रुप हो तो घर पर बच्चों के साथ की जा रही गतिविधि की फोटो या वीडियो भी ग्रुप पर शेयर कर सकते हैं।
- घर पर भी प्रिंटरिच वातावरण बना सकते हैं। जैसे किचन में उपयोग आने वाली सामग्रियों के डिब्बों पर नाम की परची चिपकाना, दीवार पर घर के सभी सदस्यों के नाम की पर्चियाँ चिपकाना, कोई कविता या गीत की पंक्तियाँ लिखना व विविध शब्द, समाचार पत्र, विविध रेपर, किताबों के नाम वगैरह पढ़ने के लिए बच्चों को प्रेरित करना।
- बच्चों को मोबाइल पर अपनी आवाज़ में कविता, गीत, चुटकुले, किसी चीज़ का वर्णन आदि रिकॉर्ड करने के लिए प्रोत्साहित करें।

- बच्चों से चित्र बनवाना, मिट्टी के खिलौने बनवाना, अँगूठे की छाप से अलग-अलग आकृतियाँ बनवाना और उन पर बच्चों से बातचीत करना।
- इसी तरह गणितीय कौशलों पर आधारित गतिविधियाँ भी पालक घर पर करवा सकते हैं, जैसे - कपड़े, चप्पल-जूते गिनने के लिए कहना, माप-तौल सम्बन्धी गतिविधि करना, नोट-सिक्के पहचानना, बच्चों को खरीददारी के समय साथ लेकर जाना और विविध चीज़ों के दाम समझने का मौका देना।
- व्यक्तिगत साफ-सफाई सम्बन्धी आदतों का विकास, कचरे का सही निपटारा करना सिखाना।

आप देखेंगे कि इस तरह अप्रत्यक्ष रूप से पालक घर पर न सिर्फ बाल-केन्द्रित शिक्षण का प्रयास कर रहे होंगे बल्कि बच्चों को आसपास के परिवेश को बेहतर रखने के लिए भी प्रेरित कर रहे होंगे। इन्हीं दोनों उद्देश्यों के लिए शाला भी तो कोशिश करती है, है न?

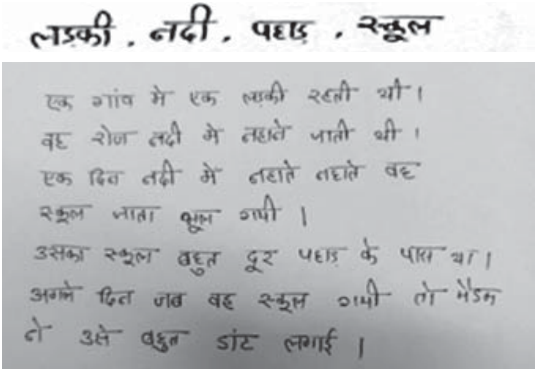

समूह क्रमांक 2 द्वारा बनाई गई कहानी।

मुक्त माहौल बहुत ज़रूरी होता है। मनोरंजनपूर्ण गतिविधियाँ बच्चों को कक्षा-कक्ष में जोड़े रखने में मदद करती हैं।

इस पालक बैठक की समाप्ति पर हमें इस बात का सुकून था कि हम पालकों को अपना पक्ष समझा पाए थे और उन्होंने शायद बच्चों द्वारा चित्र बनवाने की गतिविधि के औचित्य को भलीभाँति महसूस कर लिया था।

राजेन्द्र देशमुख: वर्तमान में *एकलव्य* के एक प्रोजेक्ट के तहत केसला, ज़िला होशंगाबाद में कार्यरत हैं। विज्ञान विषय में रुचि है।

सभी चित्र एवं फोटो: राजेन्द्र देशमुख।

बच्चे, नागरिकता और कविता

समीना मिश्रा

जब बच्चे अपनी ज़िन्दगी के अनुभवों को लिखते हैं, तो वे जो महसूस करते हैं, उसे अभिव्यक्त करने के साथ-साथ, अपने बारे में और अपने आसपास की दुनिया के बारे में समझ भी विकसित कर रहे होते हैं। ऐसे में, वे उन विषयों के बारे में सोच पाते हैं जो उनके लिए महत्व रखते हैं। साथ ही, लिखने के लिए विषय चुनने की प्रक्रिया में वे यह भी समझने लगते हैं कि वह विषय उनके लिए क्यों महत्वपूर्ण है। लेख के इस दूसरे भाग में भाईचारे के विचार पर केन्द्रित लेखन की एक गतिविधि का वर्णन किया गया है और बताया गया है कि किस तरह से यह साथ मिलकर रचने की प्रक्रिया में तब्दील हुआ। इसकी बदौलत बच्चे और वयस्क, दोनों ही एक बेहतर समझ विकसित करने की ओर बढ़े।

लेखन का विषय और प्रक्रिया

अँग्रेज़ी के शब्द 'fraternity' का हिन्दी अनुवाद 'बन्धुता' होता है। हालाँकि, यह शब्द आम प्रचलन में नहीं है। यही वजह है कि हमारी चर्चा के लिए मैंने 'अपनापन' शब्द का इस्तेमाल किया। 'अपनापन' से किसी के मन में उन लोगों के प्रति अपनेपन की भावना पनपती है, जिन्हें कोई अपना मानता है। इस प्रकार, मैंने उन्हें लिखने के लिए जो विषय दिया, वह था - मेरे लोग (My People)। एक सुगमकर्ता के तौर पर, मेरी प्रमुख चिन्ता उन्हें अपने शब्दों में लिख पाने में समर्थ बनाने को लेकर थी। इसलिए, इस बात पर ज़ोर देना ज़रूरी हो गया कि वे अपने लेखन में अपनी ज़िन्दगी और अपनी दुनिया के उदाहरणों व घटनाओं को शामिल करें। लोग अन्य लोगों के साथ नज़दीकी से जुड़ी हुई ज़िन्दगी जीते हुए विचारों को अनगिनत तरीकों से अपनाते हैं। बच्चे कई अलग-अलग तरीकों से समुदाय, जाति, अधिकारों और नागरिकता जैसे विचारों से दो-चार होते हैं, लेकिन अपनी ज़िन्दगी के रोज़मर्रा के अनुभव की बदौलत ही वे उन्हें वास्तव में समझ पाते हैं। रोज़मर्रा की ज़िन्दगी साफ-सुथरी और तयशुदा पैटर्न के हिसाब से नहीं होती, यह अलग होती है, और यहाँ तक कि यह भ्रमित करने वाली हो सकती है।

बच्चे अपनी उसी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में घूमते और खेलते हैं, और एक ऐसे स्थान पर जगहें साझा करते हैं, जहाँ सार्वजनिक और निजी, दोनों

ही जगहें सीमित होती हैं। उन्हीं रोज़मर्रा के अनुभवों से ही वे एक-साथ रहने के, और दूसरों को अपने जैसा व अपने से अलग देखने के तरीके खोजते हैं। इस प्रकार, बच्चों को इस काबिल बनाने के लिए कि वे अपनी बात को अपने शब्दों में अभिव्यक्त कर सकें, मैंने उनके रोज़मर्रा के अनुभवों की ओर रुख किया।

हमारी आपसी बातचीत में, K और S ने उन लोगों के बारे में बात की, जिन्हें वे अपना मानते थे। और जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, उनकी प्रतिक्रियाएँ धर्म, जाति और वर्ग देखकर लोगों से जुड़ने के घिसे-पिटे तौर-तरीकों से अलग थीं। इसकी बजाय, उनके रोज़मर्रा के अनुभवों में उन्हें एक ही समय में अलग-अलग स्थानों पर और अलग-अलग समूहों के साथ अपनापन महसूस हुआ। लेकिन इस गतिविधि के लिए मुझे एक ऐसी रूपरेखा बनाने की ज़रूरत थी जिसे वे इस्तेमाल कर सकें और अपने खुद के उदाहरण शामिल करके उसका विस्तार या विकास कर सकें। इसके लिए मैंने सबसे पहले उनकी ज़िन्दगी के ऐसे सन्दर्भों की पहचान की जिनमें हम अपनेपन के एहसास की खोजबीन कर सकते थे, जैसे कि घर, स्कूल, पड़ोस और देश।

फिर मैंने उनसे ऐसी परिस्थितियों की सूची बनाने को कहा जिनमें उन्हें जुड़ाव महसूस हुआ, जब उन्हें अपनेपन का एहसास हुआ। इसके साथ ही, मैंने उन्हें इनमें से हरेक स्थान के लिए ऐसी परिस्थितियों की एक सूची बनाने को भी कहा, जब उन्हें अपनापन महसूस नहीं हुआ। इससे भाईचारे और जुड़ाव के अमूर्त विचार को वास्तविक भौतिक स्थानों और अपनी ज़िन्दगी के अनुभवों से जोड़ने में मदद मिली। फिर मैंने उन्हें उस सूची में से उदाहरणों को चुनने और दोहराव वाली पंक्ति का इस्तेमाल करके कुछ इस तरह लिखने का सुझाव दिया ताकि कविता की लय बन जाए।

सबसे पहले, मैंने उन्हें 'मेरे लोग' विषय पर एक दोहराव वाली पंक्ति बनाने का सुझाव दिया, जैसे कि 'वो मेरे लोग हैं' (They are my people)। लेकिन ये सुझाव वैसी परिस्थितियों में कारगर नहीं होगा, जिनमें अपनापन ही न हो। इसलिए, जब हमने इस बारे में बात की कि अपनापन वाली स्थितियों और बगैर अपनापन वाली, दोनों सूचियों को कविता का रूप कैसे देना है, तो मैंने सुझाव दिया कि कविता को एक सवालिया तरीके से आगे बढ़ाना शायद एक कारगर तरीका हो सकता है। नतीजन, एक पंक्ति का बार-बार इस्तेमाल हुआ – क्या वो मेरे लोग हैं? (Are those my people?) इस प्रकार, हरेक स्थान की पड़ताल के लिए उन्होंने अपने जीवन की उन विभिन्न परिस्थितियों की

मेरे लोग (K)

वह लोग जो इंडिया में रहते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह लोग जो पाकिस्तान के लिए लड़ते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

वह बच्चे जो मेरे साथ क्लास में बैठते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह टीचर जो क्लास के बच्चों से गुस्से से बात करते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

वह फेमिली के लोग जो मेरे साथ रहते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह मामा जो फेमिली से लड़ते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

वह नानी के गाँव के लोग जो कहते हैं -
"नदी में पानी ज़्यादा है, वहाँ मत जाओ।"
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह दुकानवाले जो लड़कियों को गन्दी नज़र से देखते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

वह लोग जो दुनिया के पर्यावरण को बचाना चाहते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह लोग जो धरम पर लड़ाई करते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

K द्वारा रची गई कविता।

तुलना की, जिनमें उन्हें अपनापन महसूस हुआ और जिनमें उन्हें अपनापन महसूस नहीं हुआ। इसके बाद वही प्रश्नवाचक पंक्ति दोहराई गई। शैलीगत उपाय के तौर पर प्रथम पुरुष का इस्तेमाल, 'किताब महल' या 'नानी का गाँव' जैसे विशिष्ट नामों का इस्तेमाल और कुछ जगहों पर वक्ता की बातों को ज्यों-का-त्यों इस्तेमाल करने के सुझाव भी मैंने उन्हें दिए। जब चारों छन्द पूरे हो गए, तो कुछ और उदाहरण बाकी बचे थे। हमने परिचयात्मक छन्द जोड़ने की बात की, जो दिए गए सन्दर्भों तक सीमित न होकर, कहीं से भी हो सकता था। इस प्रकार, दोनों लड़कियों की कविता के शुरुआती छन्द भाईचारे के विचार को उजागर करते हैं। K की कविता देशों के विचार के ज़रिए इसे प्रस्तुत करती है

मेरे लोग (S)

वह दोस्त जो मुसीबत में साथ देते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह पड़ोसी जो छोटी-छोटी बात पर लड़ते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

वह फेमिली के लोग जिन्होंने मेरी बहन की शादी के लिए पैसे दिए थे
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह नानी जो मुझ पर शक करती है
क्या वह मेरे लोग हैं?

वह किताब महल लाइब्रेरी के लोग जो मुझे हर चीज़ में चांस देते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह लोग जो ताज होटल के अन्दर जाते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

वह टीचर जो मेरी बात सुनते हैं और मुझे समझते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह पुलिसवाले जो अमीर का पैसा लेकर गरीब पर इलज़ाम लगाते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

वह पवई के चाल के लोग जो मेरे साथ 14 अप्रैल को अम्बेडकर जयंती मनाते थे
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह लोग जो मस्जिद तोड़ते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

S द्वारा रचित कविता।

और S की कविता दोस्तों एवं पड़ोसियों के विचार के ज़रिए।

जब मैंने उनसे दो अलग-अलग सूचियाँ बनाने को कहा – एक, जब उन्हें अपनेपन का एहसास हुआ और दूसरी, जब उन्हें अपनेपन का एहसास नहीं हुआ, तो उनके अनुभवों की दो अलग श्रेणियाँ उभरकर सामने आईं। लेकिन सच तो यह है कि अपनापन महसूस होने और न होने के अनुभव इस तरह से श्रेणियों में फिट नहीं होते, ठीक वैसे ही जैसे उनकी पहचान जाति, वर्ग, धर्म और जेंडर वगैरह से घुलमिलकर बनती है। लोगों को परिस्थिति, सन्दर्भ या रिश्तों के आधार पर मज़बूत से लेकर कमज़ोर तक अलग-अलग स्तर का अपनापन महसूस हो सकता है। हालाँकि, इस तरह से एक निर्धारित समय में सूची बनाना, इस गतिविधि

की एक सीमा भी थी। इससे उस प्रक्रिया में मेरी भूमिका भी प्रतिबिम्बित होती है। मैंने उनकी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में भाईचारे के विचार को समझने के लिए एक रूपरेखा जैसी बना दी थी। इस अभ्यास के इस पहलू को ध्यान में रखना ज़रूरी है (और अपनेपन के विभिन्न रूपों और स्तरों का पता लगाने के लिए बाद में एक अभ्यास किया जा सकता है, जिसमें इस पर ज़्यादा विस्तार से काम किया जा सकता है या साक्षात्कार लिए जा सकते हैं), लेकिन मुझे नहीं लगता कि इससे बच्चों द्वारा लिखे गए विशिष्ट अनुभवों के बारे में उनका आकलन व उनके लेखन की सार्थकता समाप्त हो जाती है। हालाँकि, परिस्थितियों की तुलना दरअसल हरेक छन्द में मौजूद है, दोहराव वाली प्रश्नवाचक पंक्तियों का इस्तेमाल दोनों स्थितियों को सवालों के घेरे में लाता है। ये ऐसे सवाल हैं जिन पर पाठक और लेखक, दोनों को ही विचार करना चाहिए।

अभिव्यक्ति से बदलाव की सम्भावना

इस तरह तैयार हुई ये कविताएँ इन दो किशोरियों की ज़िन्दगी के विविध पहलुओं की कई परतों वाली बहुआयामी तस्वीर पेश करती हैं। दिए गए विषय के जवाब में उन दोनों द्वारा इस्तेमाल किए गए उदाहरण, कामगार वर्ग की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी की जटिलता को दर्शाते हैं, जैसे कि परिवारों में मौजूद तनाव, जिससे अपनेपन की जगह के तौर पर परिवार की परम्परागत परिभाषा कमज़ोर पड़ जाती है; दुकानदार जो शायद उन्हीं के मुहल्ले से है, लेकिन जिसकी गंदी नज़रें उसे शिकारी बना देती हैं; ताकत की असमानताएँ जिनकी वजह से गरीब आसानी-से पुलिस की कार्रवाइयों का शिकार बन जाते हैं, जबकि नागरिकों के तौर पर उन्हें पुलिस से सुरक्षा महसूस होनी चाहिए थी। इसके अलावा, शिक्षकों के साथ के और कक्षा के अलग-अलग तरह के अनुभव अपनेपन और अलग-थलग होने का एहसास पैदा कर सकते हैं; दलितों के किसी त्यौहार को मनाने के लिए अलग-अलग लोगों का एकसाथ आना और किसी मस्जिद जानेवाले व्यक्ति के बारे में किसी दलित की यह सोच कि मस्जिद के तोड़ दिए जाने पर वह मस्जिद को खो देगा।

हम पूरे विश्वास से तो ऐसा नहीं कह सकते कि इन तनावों की अभिव्यक्ति से बच्चों का दुनिया से और दूसरों से जुड़ने का ढंग बदल जाएगा, लेकिन अभिव्यक्ति में ऐसे बदलाव की सम्भावना निहित होती है। जब लेखिका (जो कि एक बच्ची है) विभिन्न परिस्थितियों और लोगों के सन्दर्भ में सवाल पूछती है, तो हो सकता है कि उसे जवाब मिल गया हो या हो सकता है कि न भी मिला

हो। मगर फिर भी वह इस सवाल पर विचार कर रही है कि उसके अपने लोग कौन हैं। क्लेमेंटाइन ब्यूवैस इसी 'शक्तिशाली बच्चे' की बात करते हैं, जो अनिश्चित भविष्य को बदलने की सम्भावना रखता है। वे कहते हैं कि इसके पास 'ज़्यादा समय बाकी है' जबकि वयस्क का 'ज़्यादा समय बीत चुका है', उसके पास भविष्य को बदलने की सम्भावना नहीं है।

ब्यूवैस कहते हैं कि बच्चों की किताबें उन्हें कुछ ऐसा सिखा सकती हैं, जो अब तक किसी वयस्क को भी न पता हो। उनके इसी तर्क को आधार बनाते हुए मेरा यह मानना है कि बच्चे अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति से भी ऐसा कुछ सीख सकते हैं, जिससे वयस्क भी अनजान हों। उदाहरण के लिए, भारत में रहनेवाले लोगों की पाकिस्तान के लिए लड़ रहे लोगों से तुलना करते समय, K जबरन थोपे गए अपनेपन पर सवाल उठाती है। वह सवाल उठाती है कि क्या लोगों को यह चुनने की स्वतंत्रता होती है कि कौन, कहाँ रहेगा और किसके लिए लड़ेगा?

यह सवाल केवल पाठकों के तौर पर ही हमारे लिए नहीं है, बल्कि उसके लिए भी है क्योंकि इन सवालों के ज़रिए वह अपने विचारों को व्यवस्थित करने की कोशिश कर रही है। वह पूछती है कि क्या भारत के

सभी लोग सच में उसके अपने हैं, यहाँ तक कि वे भी जो उसे 'छोटी जाति' कहते हैं और अपने बच्चों को उससे बात करने से रोकते हैं। तो ऐसे में क्या ऐसा नहीं हो सकता कि उसे पाकिस्तान के लिए लड़ रहे कुछ लोगों से अपनापन महसूस हो, चाहे भले ही वे सीमा पार एक ऐसे देश में रह रहे हैं जो भारत का कट्टर दुश्मन है? और मान लो, वो लोग उनमें से हों जो पूरी दुनिया के पर्यावरण को बचाना चाहते हों, जैसा कि वह आखिरी छन्द में कहती है।

इसी प्रकार, जब S अपने आखिरी छन्द में पूछती है कि क्या वे सभी लोग जो अम्बेडकर जयन्ती मनाते हैं, मेरे अपने लोग हैं, या फिर वे सभी जो मस्जिदों को तोड़ते हैं, मेरे अपने लोग हैं? तो ऐसा पूछकर वह जातीय और धार्मिक आधार पर बनने वाले समूह की वजह से उभरने वाले अपनेपन के विचार को जटिल बना देती है। S भारत के अन्य हिस्सों में विवादास्पद मस्जिदों से जुड़ी घटनाओं की अभ्यस्त है, भले ही वह मुस्लिम नहीं है और ये मस्जिदें उसके आसपास नहीं हैं। जिस मुस्लिम परिवार के साथ वह पली-बढ़ी है, उससे उसे एक तरह की नज़दीकी महसूस होती है और यह मसला उनके लिए चिन्ता का विषय है। यह इस शक्तिशाली बच्ची की सरल-सी अभिव्यक्ति है, जिससे उसे और वयस्कों, दोनों को यह सीख मिल सकती है कि भाईचारे के क्या मायने हैं।

यह गतिविधि एकसाथ मिलकर कुछ तैयार करने की एक ऐसी प्रक्रिया का उदाहरण है, जिसकी रूपरेखा साफ तौर पर वयस्क द्वारा निर्देशित है। विषय मैंने चुना, अपनेपन की मौजूदगी की पड़ताल करने के लिए स्थानों का चयन मैंने किया, वक्ता के शब्दों को ज्यों-का-त्यों इस्तेमाल करने या नामों का इस्तेमाल करने जैसे औपचारिक विकल्पों के चयन जैसे सुझाव मैंने दिए। मैंने निश्चित तौर पर अधिकार का प्रयोग किया। लेकिन फिर भी, एक किस्म की अनिश्चितता मौजूद थी। मैं सवाल कर सकती थी, सुझाव दे सकती थी, लेकिन वे क्या जवाब देंगे, उनकी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी से किस तरह के उदाहरण सामने आएँगे, इसे मैं नियंत्रित नहीं कर सकती थी।

इस प्रकार, हरेक पंक्ति को लिखने का पल असल में वह पल था, जब हमारे फर्क और समानताएँ घुल-मिल गईं। मैं अपने विचारों के ज़रिए अपनी ज़िन्दगी के अनुभवों को उस पल में ले आई और अन्तिम पंक्ति तैयार करने के लिए उन्होंने अपनी ज़िन्दगी के अनुभवों से जोड़ा। यह क्षण सम्भावनाओं एवं विकल्पों से भरा था और बच्चे को ही उनमें से कोई एक विकल्प चुनना था। इस विकल्प को चुनने के बाद, बच्चा खुद के लिए और वयस्क के लिए भविष्य की

सम्भावनाओं का द्वार खोलता है, यानी अपनेपन की पुनर्कल्पना करने का, 'मेरे लोग' को फिर से परिभाषित करने का एक तरीका।

निष्कर्ष

स्पाइरोस स्पाइरो ने बच्चों के साथ शोध में शोधकर्ता के परिप्रेक्ष्य, पृष्ठभूमि और व्यक्तिगत अनुभवों के बारे में लिखा है, ताकि हम शोध के ज़रिए सामने आनेवाली कहानियों में मौजूद 'अव्यवस्था, अस्पष्टता, उनमें कई अलग-अलग नज़रियों की मौजूदगी, गैर-तथ्यात्मकता और उनके अर्थ की कई परतों को स्वीकार कर सकें'। यह लेख उसी अस्पष्ट, कई नज़रियों वाली प्रक्रिया का उदाहरण है, जिसमें कविता के अर्थ की कई परतें या उसकी कई तरह से व्याख्या की जा सकती है। "क्या वो मेरे लोग हैं?" सवाल वयस्क द्वारा पूछा जाता है। इसका बच्चे जो जवाब देते हैं, उसमें उनके अनुभव और परिप्रेक्ष्य घुले-मिले हैं। बच्चों की प्रतिक्रियाओं से यह सवाल मार्मिक व सरल बन जाता है।

निश्चित तौर पर कविताओं के अन्त न सिर्फ पाठक के लिए, बल्कि उन कविताओं को लिखने वाले बच्चों के लिए भी अनिश्चित हैं। लेकिन इसके कई अर्थ निकाले जा सकते हैं। और इसीलिए बच्चों की कही बातों को सुनकर हम समुदाय, सार्वजनिक स्थान और अधिकारों जैसे विचारों को समझने के ज़्यादा सार्थक और कम संकुचित तरीके ढूँढ सकते हैं। जब बच्चे अपने विचारों को इस तरह से अभिव्यक्त करेंगे, तब क्या हम उनकी बात को सुनकर दुनिया को एक नए नज़रिए से देखेंगे?

तो, अपने दोस्त के सवाल (इस लेख के पहले हिस्से से) पर वापस लौटते हैं – मैं आज के इस निराशा भरे दौर का सामना कैसे करती हूँ? मुझे लगता है कि भले ही यह निराशा लगातार हमारे आसपास मौजूद है, लेकिन क्योंकि खुशकिस्मती से मैं बच्चों के साथ बहुत-सा काम करती हूँ इसलिए मेरे सन्दर्भ में रोज़मर्रा के राहत भरे क्षणों में यह निराशा थोड़ी छँट जाती है। बच्चों के साथ बातचीत से न सिर्फ एक हलकापन महसूस होता है, बल्कि वे एक उम्मीद भी जगाते हैं। बच्चे भविष्य को बेहतर करने का बोझ ढोते हैं जो कि ठीक नहीं। यह कुछ ऐसा है, मानो किसी टूटी-फूटी दुनिया की मरम्मत का काम उस ज़िम्मेदारी से पीछा छुड़ा चुके वयस्कों ने बड़ी आसानी-से बच्चों को सौंप दिया हो। लेकिन कहीं-न-कहीं, वे इस ज़िम्मेदारी से बच नहीं सकते क्योंकि भविष्य स्वाभाविक रूप से बच्चों का है और वयस्क उसे बेहतर करने में उनका साथ भर दे सकते हैं।

इस पूरी प्रक्रिया में, यह दायित्व वयस्कों का होना चाहिए कि वे इन्सानों के बीच की अन्तःक्रियाओं में मौजूद सम्भावनाओं को तलाशें। इस

पूरी प्रक्रिया में वयस्क का यह दायित्व है कि पूर्वाग्रह से ग्रसित होने से पहले वे इन्सानों की बातचीत में मौजूद सम्भावनाओं को तलाशें ताकि हम भिन्नताएँ होने के बावजूद एक-दूसरे से जुड़ने के सरल तरीकों को भूल न जाएँ। बच्चों की लेखिका कैथरीन रंडैल लिखती हैं, "बच्चों के लिए लिखने वाले बहुत-से लेखक और चित्रकार पहले से ही उम्मीद को तलाशने और इसे सहेजने का काम कर रहे हैं, अचम्भित करने वाली चीज़ों को रच और साझा कर रहे हैं।" बच्चों के साथ काम करने, उनके साथ कुछ कलात्मक रचने में दुनिया को नए नज़रिए से देखना शामिल है। साथ ही, इस प्रक्रिया में यह याद रखना भी ज़रूरी है कि दुनिया को हमेशा एक नए नज़रिए से देखा और समझा जा सकता है। बच्चों के साथ काम करने पर हम निराशा भरे दौर में भी उम्मीद कायम रख पाते हैं।

समीना मिश्रा: नई दिल्ली स्थित एक वृत्तचित्र फिल्म निर्माता, लेखक और शिक्षक हैं, जिनकी बच्चों से सम्बन्धित मीडिया में विशेष रुचि है। वे भारत में अपने पलने-बढ़ने के अनुभवों को दर्शाने के लिए अपने काम में बचपन, पहचान और शिक्षा के लेंस का इस्तेमाल करती हैं।

यह लेख TESF India द्वारा समर्थित उनके रिसर्च प्रोजेक्ट 'हम हिन्दुस्तानी' पर आधारित है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: शहनाज़: वर्तमान में *एकलव्य* की शिक्षा साहित्य टीम के साथ कार्यरत। कुछ सालों तक शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत गैर सरकारी संगठनों के साथ काम करने के बाद, साल 2019 से कॉपी एडिटर और अनुवादक के तौर पर स्वतंत्र रूप से भी काम कर रही हैं। समाज में मौजूद विभिन्न तरह की असमानताओं से जुड़े विविध पहलुओं को समझने में दिलचस्पी रखती हैं। कानपुर में रहती हैं।

सभी फोटो: समीना मिश्रा।

यह लेख *टीचर प्लस* पत्रिका के अंक फरवरी, 2023 से साभार।

सन्दर्भ:

- ब्यूवैट, क्लेमेंटाइन, *दी माइटी चाइल्ड: टाइम एंड पॉवर इन चिल्ड्रन्स लिटरेचर*, जॉन बेंजामिन्स पब्लिशिंग कम्पनी, 2015.
- कम्यूनिटी डिज़ाइन एजेंसी.
  https://communitydesignagency.com/projects/natwar-parekh-colony/
- मणि, लता, *दि इन्टीग्रल नेचर ऑफ थिंगस: लता मणि इन कन्वर्ज़ेशन विद अम्लानज्योति गोस्वामी,* पब्लिक टेक्स्ट्स a@IIHS, 5 फरवरी 2014
  https://www.youtube.com/watch?v=wKuj2mFx7XQ
- रंडैल, कैथरीन (सं.), *दि बुक ऑफ होप्स: वड्र्स एंड पिक्चर्स टु कम्फर्ट,* इन्सपाइर एंड एंटरटेन, ब्लूम्सबरी चिल्ड्रन्स बुक्स, 2020
- स्पाइरौ, स्पाइरोस, *दि लिमिट्स ऑफ़ चिल्ड्रन्स वॉइसेस: फ्रॉम ऑथेन्टिसिटी टु क्रिटिकल, रिफ्लेक्सिव रीप्रेज़ेंटेशन,* चाइल्डहुड, 11 अप्रैल 2011
  http://chd.sagepub.com/content/18/2/151

बच्चे और एटलस

प्रकाश कान्त

नक्शे की ही तरह एटलस भी सामाजिक अध्ययन शिक्षण की एक अनिवार्य सहायक सामग्री है। लेकिन देखने में आम तौर पर यही आता है कि सरकारी हो या निजी, हर तरह के स्कूल में इस विषय को पढ़ने-पढ़ाने का काम बिना एटलस के ही निपटा दिया जाता है। जब नक्शों के बिना ही पढ़ना-पढ़ाना हो जाता हो तब एटलस की तो यूँ भी कोई खास ज़रूरत नहीं रह जाती। यही कारण है कि हायर सेकेंडरी स्तर तक के छात्र सामान्यतः एटलस के बारे में नहीं जानते। मेरा अनुभव तो इस मामले में और भी ज़्यादा निराशाजनक और अफसोसनाक रहा है। मैंने निजी स्कूलों में पढ़ा रहे दो युवा शिक्षक साथियों से जब जानना चाहा कि वे अपने पढ़ाने के दौरान एटलस का इस्तेमाल किस तरह करते हैं, तब जवाब में वे एकसाथ चौंके।

"एटलस!", उन्होंने एक साथ पूछा। उनके चेहरे पर सवाल, जिज्ञासा और कुछ-कुछ हैरानी एकसाथ दिख रहे थे। उनके इस तरह पूछने पर मैं खुद परेशान होने की हद तक हैरान था क्योंकि वे दोनों शिक्षक हाई स्कूल स्तर का भूगोल पढ़ा रहे थे और पढ़ाते हुए उन्हें तीन-चार साल हो गए थे। दोनों ही पोस्ट ग्रेजुएट थे। मुझे अपने सवाल और पूछने के ढंग पर शक होने लगा! कहीं गलत सवाल या सही सवाल गलत ढंग से तो नहीं पूछ लिया। जब पाया कि सवाल पूछने के ढंग में कोई उलझन नहीं है तो बहरहाल, मैंने सवाल दोहराया।

इस बार उन्होंने पूछा तो नहीं लेकिन एक-दूसरे को टटोलने की नज़र से देखा। शायद वे आपस में जानना चाह रहे थे कि मैं क्या पता करना चाहता हूँ!

"क्या आप लोग सच में एटलस के बारे में नहीं जानते?" मैंने अपनी हैरानी ज़ाहिर की! मुझे भरोसा नहीं हो रहा था। लग रहा था कि वे शायद मज़ाक कर रहे हैं।

उन्होंने अस्वीकार में गर्दन हिलाई। मैं ज़बरदस्त ढंग से हैरान।

"एटलस जिसमें नक्शे होते हैं।" मैंने समझाने की कोशिश की!

उनके चेहरे पर अभी भी अस्वीकार लिखा हुआ था।

"आप लोगों को अपनी पढ़ाई के दौरान क्या कभी एटलस नहीं दिखाया गया? कभी उसकी चर्चा नहीं हुई?"

उन्होंने फिर इनकार में गर्दन हिलाई।

"फिर भूगोल-इतिहास किस तरह पढ़ाया गया?"

"जी कुछ ज़रूरी मोटी-मोटी बातें बताकर प्रश्नोत्तर लिखवा दिए जाते थे।"

"आप लोग क्या करते हैं?"

"हम लोग भी कुछ खास-खास बातें बता-समझाकर प्रश्नोत्तर लिखवा देते हैं। समय पर कोर्स खत्म करना होता है।" उन दोनों के चेहरे पर मायूसी थी।

एक अन्य अनुभव

यह मेरे लिए अद्‌भुत अनुभव था क्योंकि मुझे तो हायर सेकेंडरी के दौरान अपने शिक्षकों द्वारा नक्शे भी दिखाए गए थे और एटलस भी! सेन्धवा हायर सेकेंडरी स्कूल में तो पुरोहित सर ने एक सुव्यवस्थित भूगोल कक्ष ही बना रखा था जिसकी दीवारें मध्य प्रदेश और भारत के ही नहीं बल्कि सभी महाद्वीपों के नक्शों से सजी हुई थीं। नक्शा-स्टैंड पर और भी कई तरह के नक्शे रखे हुए थे जिनका भूगोल की क्लास के दौरान नियमित रूप से उपयोग होता था। नक्शों के अलावा दो-तीन अलग-अलग साइज़ के ग्लोब तथा कुछेक जीवाश्म जैसी चीज़ें भी रखी हुई थीं। परतदार, कायान्तरित और आग्नेय चट्टानों के नमूने भी मौजूद थे। कक्षा में जाते ही एक खास तरह का एहसास होता था। इतना ही नहीं, उन्होंने ज्यामिति की मदद से भारत का नक्शा बनाने की विधियाँ भी विकसित की थीं। नौवीं क्लास में वे सबसे पहले उसी विधि से नक्शा बनवाने का अभ्यास करवाते थे। उनके अलावा इतिहास पढ़ाने वाले सर भी 'विश्व की प्रमुख सभ्यताएँ' जैसे पाठ पढ़ाते समय विश्व के नक्शे का उपयोग करते थे। भारत का इतिहास पढ़ाते समय वे अनिवार्य रूप से भारत के नक्शे का उपयोग करते ही थे और यूरोप का इतिहास पढ़ाते हुए यूरोप के राजनैतिक नक्शे में बहुत सारी ज़रूरी जगह बताते चलते थे।

पुरोहित जी ने एक और अद्‌भुत काम किया था। स्कूल के मैदान में जहाँ रोज़ प्रार्थना होती थी, वहाँ भारत का एक बहुत बड़ा त्रिआयामी नक्शा बना दिया था। पहाड़, पठार, मैदान, नदियाँ सभी कुछ! उसी नक्शे से पहाड़, पठार, मैदान की संरचनाएँ और अवधारणाएँ समझ में आई थीं। बाद में जब देवास के नारायण विद्या मन्दिर हायर सेकेंडरी स्कूल में आया तब वहाँ तोमर साहब भूगोल पढ़ाते थे। उनसे पढ़ने-पढ़ाने के दौरान नक्शे-एटलस का विस्तार से उपयोग करने के फायदे समझ में आए थे। हायर सेकेंडरी होने तक मेरे समेत पूरी क्लास एटलस और नक्शे की अहमियत अच्छी तरह जान-समझ चुकी थी। बहरहाल, उस वक्त उन दो युवा शिक्षकों को मैं एटलस के बारे में जितना कुछ संक्षिप्त और स्पष्ट ढंग

चित्र: अनन्या सिंह

से बता सकता था, उतना बताने की कोशिश की थी और आग्रह किया था कि वे स्वयं एटलस देखने-दिखाने की पहल करें!

पाठ से जुड़े नक्शे

जब मानकुण्ड-अरलावदा स्कूलों में *एकलव्य* का सामाजिक अध्ययन नवाचार कार्यक्रम शुरू हुआ तब देखा कि इन प्रायोगिक किताबों में काफी संख्या में न सिर्फ नक्शे दिए गए थे जैसे सामाजिक अध्ययन की पुस्तक में सामान्यतः दिए होते हैं बल्कि इन नक्शों को पाठ पढ़ने-पढ़ाने की प्रक्रिया में विभिन्न अनिवार्य गतिविधियों से जोड़ा भी गया था। ऐसा सिर्फ भूगोल में ही नहीं बल्कि इतिहास और आठवीं कक्षा के नागरिकशास्त्र में सरकार से जुड़े पाठ के लिए भी था। ये नक्शे सामाजिक अध्ययन की प्रचलित किताबों में दिए गए नक्शों की तरह तमाम किस्म की जानकारियों से ठस्सम-ठस्स भरे हुए नहीं थे और न ही उनकी तरह अस्पष्ट! इन किताबों में कुछ नक्शों के खाली खाके भी दिए गए थे ताकि पढ़ते समय उनका हाथो-हाथ अभ्यास भी किया जा सके। पाठ के भीतर दिए गए प्रश्नों को भी इसी तरह बनाया गया था। ज़ाहिर है, इससे समझाने में काफी सहूलियत रहती थी। इसके बावजूद मुझे लगता था कि चूँकि वे नक्शे सम्बन्धित कक्षा के पाठ्यक्रम तक ही सीमित हैं इसलिए अतिरिक्त काम के लिए और भी नक्शे चाहिए। एक ही जगह। इस तरह एटलस का विचार आया।

स्कूल में ग्लोब की तरह एक एटलस भी था। मध्य प्रदेश, भारत और सभी महाद्वीपों के प्राकृतिक तथा

राजनैतिक नक्शों वाला एटलस, जिसके शुरू के पन्ने पर कुछ प्राकृतिक संरचनाओं के चित्र थे। पहले मैंने बच्चों के एक समूह को स्वतंत्र रूप से उस एटलस को उलटने-पलटने को दिया। फिर दूसरे समूह को दिया। उसने भी एटलस को देखा, थोड़ी-बहुत आपस में चर्चा की और बन्द कर दिया। अगले दिन कुछ और समूहों के साथ भी वैसा किया। फिर जो उन्होंने देखा-टटोला था, उस पर चर्चा की। मैंने पाया कि बात बनी नहीं। कुछ खास निकलकर नहीं आया। लगा कि कुछ और किया जाना चाहिए।

इसलिए मैंने एटलस के नक्शों को पढ़ाने के दौरान ही पाठ से जोड़ने की कोशिश की। पाठ में उल्लेखित वे जगहें जो किताब के नक्शों में नहीं थीं, उन्हें एटलस के नक्शों में ढुँढवाया। दीवार पर टँगे नक्शे में दी गई चीज़ों को एटलस के नक्शे में देखने को कहा। बात बनती नज़र आई। मैंने पाया कि उन्हीं समूहों के बच्चे अब एटलस को ज़्यादा गौर से देख रहे हैं। और ढूँढ लेने के बाद उनके चेहरों पर एक खास तरह की चमक आ गई है। मुझे दिशा और सूत्र मिल गए थे। समझ गया था कि कक्षा में अगर अधिक-से-अधिक संख्या में

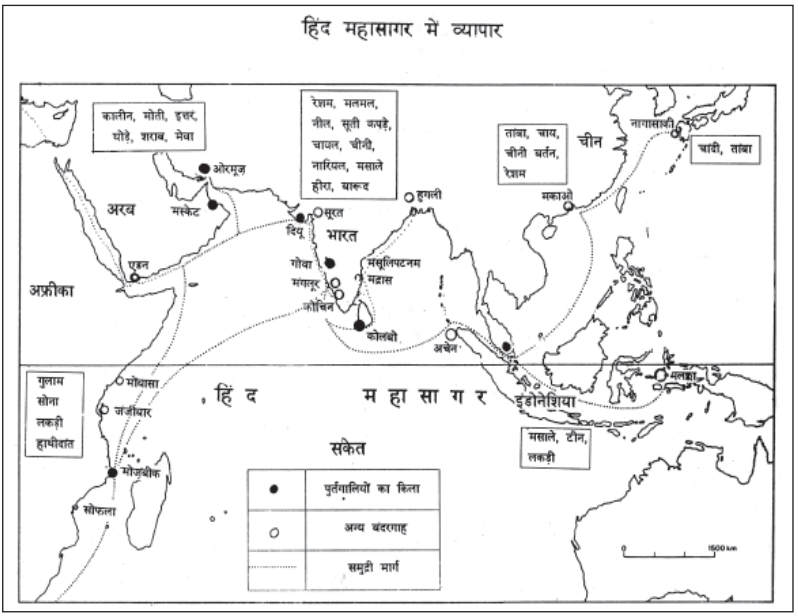

चित्र-1: *एकलव्य द्वारा विकसित सामाजिक अध्ययन की पुस्तक के कक्षा आठवीं के इतिहास खण्ड के पाठ 'मुगल काल में विदेशी व्यापार की दुनिया' से लिया गया नक्शा।*

एटलस हों और उनका उपयोग किया जाए तो सामाजिक अध्ययन को पढ़ाना ज़्यादा बेहतर, रचनात्मक और प्रभावशाली बनाया जा सकता है। पुस्तक में दिए गए नक्शे इस मामले में पूरी तरह मददगार तो थे लेकिन सामान्यत: वे अपने पाठों तक सीमित और सन्दर्भित भी थे।

बिन नक्शों की सीमाएँ

ऐसे में पाठ और किताब के बाहर के देश या महाद्वीपों के बारे में कुछ बताते वक्त दिक्कत होती थी। यदि आठवीं क्लास में उत्तरी अमेरिका पढ़ाते वक्त किसी प्रसंग में अफ्रीका या एशिया या यूरोप के बारे में भी बात करनी हो तो पुस्तक इस मामले में असहाय रहती थी, क्योंकि इन महाद्वीपों से सम्बन्धित पाठ पिछली छठी या सातवीं क्लास में हो चुके थे। ऐसे में समानान्तर रूप से तत्काल उनके बारे में कुछ बताने का कोई ज़रिया नहीं रहता था। बच्चों के पास निजी एटलस होने पर इस समस्या का समाधान किया जा सकता था। मैंने बच्चों से एटलस खरीदवाए। पहले ऐच्छिक तौर पर। उनका समूह बनाकर इस्तेमाल करवाया। ज़ाहिर है, फायदा हुआ।

बेशक, समूह में उपयोग करने में परेशानी थी। समय लगता था। और हर बच्चा ठीक-से या एकजैसा सक्रिय नहीं रह पाता था। फिर मैंने हर बच्चे के लिए एटलस खरीदवाना शुरू कर दिया। सबसे सस्ता और दसवीं तक काम दे सकने वाला एटलस। सभी महाद्वीप और भारत एवं मध्य प्रदेश के दो-दो प्राकृतिक-राजनैतिक नक्शों वाला एटलस। तब वह आठ रुपए में मिलता था। और इतनी राशि बच्चे खर्च कर सकते थे। खरीदने के लिए वे खुद भी उत्साहित थे। खासकर, जब पाठ पढ़ते वक्त उन्हें उसका इस्तेमाल करना आने लगा। बल्कि उन्हें इसमें एक तरह से मज़ा भी आने लगा। हालाँकि, शुरू-शुरू में एकदम आसान भी नहीं रहा। पहले वे महाद्वीप की आकृति की मदद से महाद्वीप पहचानने लगे। साथ में, उसके आसपास के सागर-महासागर। फिर पहाड़, नदियाँ, मैदान। फिर देश, प्रान्त, शहर। इसी तरह से और भी बहुत कुछ। शुरू में यह सब देखने-पहचानने की रफ्तार धीमी रही। लेकिन एक-दूसरे से पहले ढूँढने की कोशिश में रफ्तार बढ़ती चली गई। उनके बीच एक तरह से सबसे पहले ढूँढने की होड़ शुरू हो गई। बाद में तो यह एक तरह के खेल में बदलने लगा। मैंने पाया कि एटलस के आधार पर ऐसी बहुत सारी प्रतियोगितानुमा गतिविधियाँ करवाई जा सकती हैं जिनके ज़रिए सामाजिक अध्ययन की समझ भी विकसित होती हो! प्रश्न-मंच जैसे अनौपचारिक समूह खड़े किए जा सकते हैं। मैं यह कर पाया। इसका एक फायदा यह हुआ कि कक्षा और अध्यापन की एकरसता

चित्र-2: *कक्षा आठवीं के नागरिकशास्त्र खण्ड के पाठ 'सरकार' से लिया गया नक्शा।*

टूटी और निष्क्रिय या उदासीन रहने वाले छात्र भी सक्रिय हुए।

खुलती दिशाएँ

बाद में, एक और कदम उठाया कि मासिक टेस्ट, तिमाही, छमाही और स्थानीय परीक्षाओं में भी एटलस आधारित प्रश्न शामिल करने लगा। आकार के हिसाब से सबसे बड़े से लेकर सबसे छोटे महाद्वीपों की सूची बनाओ, अटलांटिक महासागर के आसपास के महाद्वीपों के नाम लिखो, भूमध्यसागर के आसपास कौन-कौन से देश हैं, बताओ। बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियों के नाम लिखो।

इस तरह के बहुत सारे और कई तरह के प्रश्न बनते थे। सूचियाँ और तालिकाएँ बनती थीं। दिशाएँ देखी जाती थीं। और लगभग 70-75 फीसदी बच्चे इन प्रश्नों को हल कर लेते थे। बाद में इन प्रश्नों को अनिवार्य प्रश्नों में शामिल किया जाना और ज़्यादा फायदेमन्द रहा।

वैसे एटलस देखने-सीखने की यह प्रक्रिया मैंने एक तरह से परिचित और पास के क्रम से शुरू की। मतलब पहले मध्य प्रदेश, फिर देश। उसके बाद एशिया। और आखिर में दीगर महाद्वीप! वैसे कायदे से तो बिलकुल शुरू में ज़िले के नक्शे के बारे में बताया जाना चाहिए था। लेकिन दिक्कत यह थी कि एटलस में ज़िले के नक्शे दिए नहीं गए थे। वैसे में ज़िले के दीवार नक्शे से ही काम चलाना होता था। बहरहाल, प्रदेश से महाद्वीपों तक की यह यात्रा समझ बनाने के लिहाज़ से काफी सुविधाजनक और कारगर रही।

खैर, आठवीं तक आते-आते यह हुआ कि बच्चे किसी भी महाद्वीप या देश का उल्लेख होने पर उसे खुद ही एटलस में ढूँढने-देखने लगे। मेरे खयाल से आठवीं तक के बच्चे को इतना अभ्यास और जानकारी हो जाना और उसका इस तरह से सक्रिय बन जाना कम नहीं था।

एटलस की छाप

इनमें से जिन बच्चों ने भूगोल या सामाजिक अध्ययन के अन्य विषयों में ग्रेजुएशन किया, उन्हें यह अनुभव और दक्षता काफी काम आई। अभी कुछ साल पहले ऐसे ही दो पूर्व छात्र मिले। वे नज़दीक के शहर हाट पीपल्या से ग्रेजुएशन कर रहे थे। और एक विषय भूगोल ले रखा था। उन्होंने बताया कि अपनी कक्षा में उनका प्रदर्शन सबसे बेहतर रहता है। और विषयों के शिक्षक उनकी तैयारी एवं दक्षता देख-समझकर प्रभावित हैं।

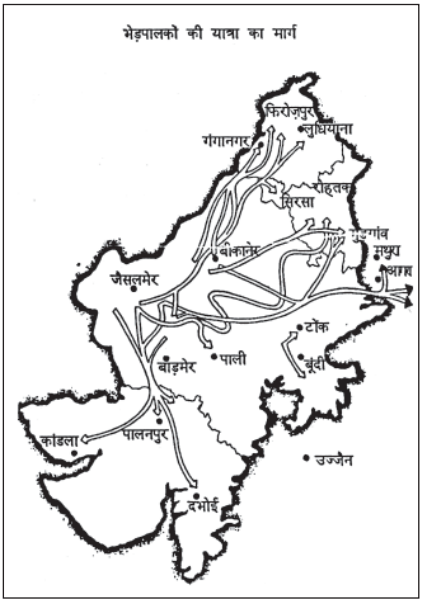

चित्र-3: *कक्षा आठवीं के भूगोल खण्ड के पाठ 'राजस्थान - थार का मरुस्थल' से लिया गया नक्शा।*

मैं आखिर तक अपनी कक्षा में एटलस को ज़रूरी औज़ार की तरह इस्तेमाल करता रहा। हालत यह हो गई कि बच्चों के पास अपने निजी एटलस न होने पर, मेरे लिए पढ़ा पाना मुश्किल होने लगा। मेरे भीतर यह विश्वास बैठ गया कि मैं तब तक भूगोल नहीं पढ़ा सकता जब तक बच्चे पढ़ते वक्त साथ में अपने-अपने एटलस इस्तेमाल न कर रहे हों। जैसा मैंने बताया था, उन दिनों एक सामान्य एटलस आठ रुपए में आ जाता था। मैं छठी में प्रवेश लेने वाले छात्रों के लिए सत्र के शुरू में ही अन्य पाठ्यपुस्तकों के साथ एटलस खरीदना अनिवार्य कर देता था। आठ रुपए का एटलस उन्हें तीन साल मतलब आठवीं तक तो काम आना ही था। हालाँकि, बाद में मैं देवास से थोकबन्द एटलस खरीदकर उपलब्ध करवाने लगा जो उन्हें और भी सस्ते पड़ते थे।

एटलस के नक्शे और रंग

ये एटलस उपयोगी तो बहुत थे लेकिन इनके साथ दिक्कत भी थी और वह थी, उनके रंग! जहाँ तक पाठ्यपुस्तकों के नक्शों की बात है, आम तौर पर वे रंगीन नहीं होते। इन श्वेत-श्याम नक्शों में पहाड़, पठार, मैदान वगैरह जैसी चीज़ें विभिन्न संकेतों से दिखाई जाती हैं। बेशक, इन संकेतों की अपनी सीमा होती है। लेकिन इनके ज़रिए समझाना एवं

समझ बनाना आसान होता है क्योंकि वे अपने सांकेतिक अर्थों में ज़्यादा स्पष्ट और बोधगम्य होते हैं। सामान्य (सस्ते) एटलस के नक्शे जो कि रंगीन होते हैं, उनके साथ यह बात नहीं होती। खासकर पहाड़, पठार, मैदान जैसी प्राकृतिक संरचनाएँ बताने वाले नक्शों में! नीले रंग से पानी, हरे से मैदान, गहरे कत्थई से पहाड़, पीले-भूरे से पठार वगैरह दिखाए जाते हैं और बच्चे इनके ज़रिए नक्शों में इन चीज़ों को देख-पढ़ भी लेते हैं। लेकिन ज़मीन की अलग-अलग ऊँचाइयों को रंगों की संकेत-तालिका के ज़रिए पढ़ने-जानने में दिक्कत होती है। और उलझन भी! इसकी वजह होती है, रंगों की अस्पष्ट छपाई! खासकर, एक ही रंग की हल्की और गहरी छपाई में। बच्चे आम तौर पर महँगे एटलस खरीद नहीं पाते इसलिए उन्हें सस्ते एटलस से ही काम चलाना पड़ता है जिनमें यह समस्या कमोवश रहती ही है। सामान्यतः ये रंग अस्पष्ट होने के अलावा आपस में गड्ड-मड्ड भी होते हैं।

इसके अलावा ज़मीन की ऊँचाई के बढ़ते जाने को रंगों के जिस महीन फर्क से दिखाया जाता है, उसे समझना बच्चों के लिए काफी मुश्किल रहता है। वे उस महीन अन्तर को पकड़ नहीं पाते। जबकि श्वेत-श्याम रंगों में दी गई संकेत तालिका के संकेत काफी साफ होते हैं। अलग-अलग ऊँचाइयों के वर्ग, उनके ज़रिए बहुत स्पष्ट ढंग से बताए जाते हैं। मसलन, 500 से 1000 मीटर की ऊँचाई को आड़ी रेखाओं से बताया है तो 1000 से 1500 को क्रॉस रेखाओं से! ऐसे ही अन्य पैटर्न। लेकिन एटलस के नक्शों में इन्हें एक ही रंग की अलग-अलग ग्रेडिंग से दिखाया जाता है। ग्रेडिंग या शेड्स से। इसके अलावा रंग सटीक ढंग से सही जगह छपे नहीं होते। इधर-उधर फैले हुए नज़र आते हैं। जैसा पहले कहा, यह समस्या आम तौर पर सस्ते एटलसों के साथ होती है। लेकिन जब आप हर बच्चे के पास उसका निजी एटलस होने का लक्ष्य चुनते हैं और ये बच्चे गाँव के सरकारी स्कूल के सामान्य या निम्न आय वर्ग के होते हैं तब आपके पास सस्ते एटलस का विकल्प ही बचता है; जिसकी मदद से आपका उद्देश्य बुनियादी समझ बनाने का होता है। ऐसे में, आपको रंगों की छपाई की समस्या से निपटने का रास्ता खुद तलाशना पड़ता है। इसके लिए मैंने शुरू में खुद को स्थूल और बहुत साफ-साफ दिखने एवं समझ में आने वाले भू-विभाजन पर फोकस किया। इसके लिए रोल-अप बोर्ड पर बने नक्शों के खाके में चॉक रंगों से इन विभाजनों को प्रदर्शित करने की कोशिश की। पहाड़, पठार, मैदान! यह बहुत साफ और मोटा-मोटा-सा भू-विभाजन था। असल उद्देश्य प्राकृतिक नक्शों को

पढ़ना सीखना था। खासकर रंगों की मदद से। रंगीन नक्शे में धरातल की बनावट पढ़ने में सबसे ज़्यादा मददगार रहा मध्य प्रदेश का नक्शा।

अविभाजित मध्य प्रदेश के नक्शे में धरातल की बनावट में बहुत ज़्यादा भिन्नता नहीं थी। शून्य से 1350 मीटर की ऊँचाई के इस धरातल का अधिकांश हिस्सा शून्य से 600 मीटर के बीच का था जिसकी दो हिस्सों में ग्रेडिंग थी। शून्य से 300 और 300 से 600 मीटर! पहला हिस्सा जो नर्मदा, चम्बल, महानदी वगैरह के आसपास था, गहरे हरे रंग और दूसरा हिस्सा जिसमें मध्य प्रदेश का बहुत बड़ा भाग आता था, हल्के हरे रंग में दिखाया गया था। इसके अलावा महादेव पहाड़ियाँ और मैकल श्रेणियाँ पीले और कत्थई रंग में प्रदर्शित थीं, जो समुद्र की सतह से 600 से 1350 मीटर की ऊँचाई की थीं। 900 से 1350 मीटर ऊँचाई का भू भाग बहुत कम था और कत्थई रंग में दिखाया गया था, वह आसानी-से पहचाना जा सकता था। बच्चों की यह भी समझ बनी कि नदियों के आसपास का इलाका आम तौर पर अपेक्षाकृत सबसे निचला भू-भाग होता है।

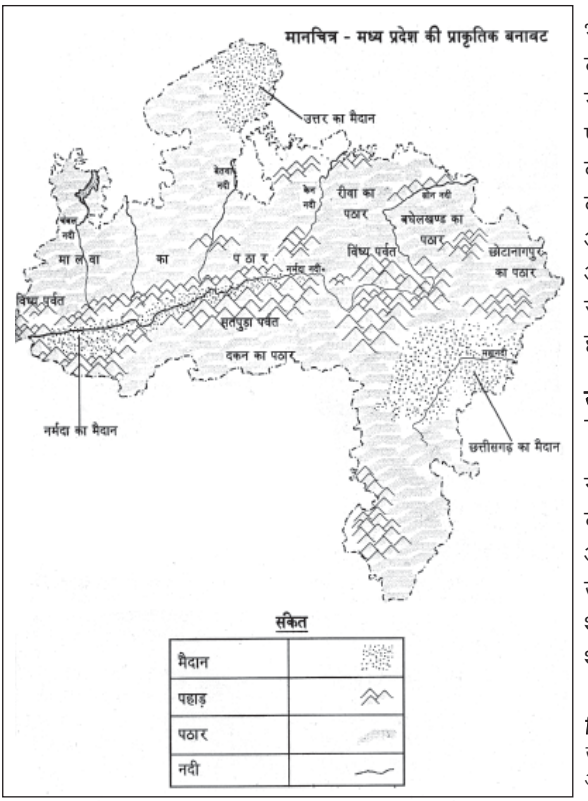

ऊँची-नीची मुश्किलें

यहीं एक बात और - नक्शे में बताई गई ज़मीन की ऊँचाई को बच्चे अपने आसपास की ज़मीन की ऊँचाई के सन्दर्भ में देखते थे। उन्हें यह समझने में थोड़ी मुश्किल हुई कि

चित्र-4: *कक्षा छठवीं के भूगोल खण्ड के पाठ 'मैदान, पहाड़ और पठार' से लिया गया नक्शा।*

नक्शों में ज़मीन की जो ऊँचाई दिखाई जाती है, वह समुद्र की सतह से नापी गई ऊँचाई होती है। यहीं उनकी ओर से सवाल आया कि समुद्र की सतह से इतनी अलग-अलग जगहों, खासकर समुद्र से दूर की जगहों की ऊँचाई कैसे नापी गई! इस सवाल का जवाब देना मेरे लिए आसान नहीं रहा था। यूँ भी, समुद्र की सतह से ज़मीन की ऊँचाई नापने का तरीका अपने-आप में काफी जटिल था। उसे जितना सम्भव हो सकता था, उतना आसान करके समझाने का मैंने प्रयास किया था। इसी से मिलता-जुलता मुद्दा था, समुद्र से दूरी और समुद्र की सतह से ऊँचाई का! ये दोनों ही किसी जगह की जलवायु को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक थे। इन दोनों को लेकर बच्चे अक्सर गड़बड़ाते थे।

मध्य प्रदेश के प्राकृतिक नक्शों के ज़रिए रंगों की मदद से धरातल की बनावट पढ़ने-समझने में आसानी हुई। हालाँकि, छठी कक्षा के कोर्स में मध्य प्रदेश तो नहीं था। सिर्फ 'पहाड़, पठार और मैदान' पाठ में मध्य प्रदेश का एक प्राकृतिक नक्शा था। उसे और एटलस में दिए मध्य प्रदेश के प्राकृतिक नक्शे के आधार पर काम करवाने में कई पीरियड लग गए। लेकिन अगला काम इससे आसान हो गया।

वैसे एटलस के रंगीन नक्शों को लेकर बच्चों की शुरू-शुरू में कुछ मौलिक दिक्कतें भी होती हैं। खासकर राजनैतिक और प्राकृतिक नक्शों के सन्दर्भ में। जब उन्हें बता दिया जाता है और वे सीख भी जाते हैं कि प्राकृतिक नक्शों में रंगों के अपने निश्चित अर्थ होते हैं तो वे राजनैतिक नक्शों को भी इसी समझ के साथ पढ़ने की कोशिश करते हैं। जबकि वहाँ रंगों का इसके सिवा कोई मतलब नहीं होता कि वे ज़िले, प्रान्त, देश या महाद्वीपों को एक-दूसरे से अलग-भर बताने का काम करते हैं। रंगीन नक्शों में रंगों की यह दो तरह की भूमिका बच्चों को अक्सर भ्रमित करती है। खासकर, शुरू की कक्षाओं में। बाद में तो वे इस फर्क को समझ लेते हैं।

मैंने अपने स्कूल में बच्चों से एटलस की मदद से नक्शे बनवाना शुरू किया। धीरे-धीरे तीनों क्लास के सभी बच्चों के पास एटलस हो ही चुके थे। पेंसिल, रबर वगैरह उनके कम्पास बॉक्स में थे। इसके अलावा बाज़ार में मिलने वाले चॉक कलर भी उन्हें खरीदवा दिए थे। उन दिनों चॉक कलर यानी क्रेयोन की सस्ती डिब्बी तीन रुपए में मिलती थी जो लगभग हर स्टेशनरी की दुकान पर उपलब्ध थी। इन रंगों का नक्शों के लिए तो उपयोग होना ही था, इसके अलावा चूँकि उन दिनों स्कूलों में *एकलव्य* की बहुत सारी गतिविधियाँ चलती थीं इसलिए उनमें होने वाली चित्र प्रतियोगिता वगैरह में भी ये रंग

काम में आते थे। बाल पत्रिका *चकमक* में बच्चों के बनाए चित्रों के लिए कई पन्ने आरक्षित होते थे जिनमें उस दौर के कई बच्चों के चित्रों को जगह मिली थी। मेरे स्कूल के बच्चों के चित्रों को भी। जैसा कि पहले भी ज़िक्र किया, मेरे स्कूल के इकबाल का बनाया मोर का चित्र तो *चकमक* के बीच के दो पेज पर छपा था और काफी चर्चित भी हुआ था।

बहरहाल, ये चॉक कलर बच्चों से रंग भरवाने के लिए मुफीद थे। इनके बॉक्स पतले गत्ते के होते थे और जल्दी टूट जाते थे। बच्चे उन्हें अपने कम्पास बॉक्स में या बाद में बाज़ार में मिलने लगे प्लास्टिक के डिब्बों में रखने लगे।

रंगीन नवाचार

ये चीज़ें सामाजिक अध्ययन पढ़ाने में काफी मददगार रहीं। किताबों में दिए नक्शों के लिए भी और उनके अलावा दूसरे नक्शों के लिए भी। किताबों के बाहर के नक्शों को उन्होंने ट्रेस कर उनमें समुद्र, पहाड़, नदी वगैरह बनाकर, उनमें रंग भरा। इसके अलावा किताब में दिए गए श्वेत-श्याम नक्शों में भी रंग भरे। यहाँ तक कि इतिहास के पाठों में जो अलग-अलग तरह के नक्शे दिए गए थे, उन्हें भी रंगीन बना दिया। ऐसा करते वक्त नक्शे में रंग भरने के जो मानक हैं, उनका भी ध्यान रखा। मतलब कि समुद्र, झील या नदी को नीले से ही रंगा – लाल, हरे, पीले से नहीं, और मैदान हरे से ही बताया, गुलाबी या कत्थई से नहीं! यह उनका अपनी तरह का नवाचार था। चौंकाने वाला काम जिसके बारे में न मैंने सोचा था और न उस तरह की कोई कल्पना ही की थी। बच्चे होने की यही फितरत है। वे आपका अनसोचा ऐसा भी कुछ कर डालते हैं जो नया होने के साथ-साथ आपको चौंकाने वाला भी होता है। बाजवक्त, आप जहाँ तक का सोच पाते हैं, बच्चे उसके आगे का सोचते और कर डालते हैं।

प्रकाश कान्त: हिन्दी से एम.ए. और रांगेय राघव के उपन्यासों पर पीएच.डी. की है। शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं आलेख प्रकाशित। चार उपन्यास – *अब और नहीं, मक्तल, अधूरे सूर्यों के सत्य, ये दाग-दाग उजाला*; कार्ल मार्क्स के जीवन एवं विचारों पर एक पुस्तक; तीन कहानी संग्रह – *शहर की आखिरी चिड़िया, टोकनी भर दुनिया, अपने हिस्से का आकाश*, संस्मरण – *एक शहर देवास, कवि नईम और मैं*, और फिल्म पर एक पुस्तक – *हिंदी सिनेमा: सार्थकता की तलाश* प्रकाशित हो चुकी हैं। लगभग 30 वर्षों तक ग्रामीण शालाओं में अध्यापन।

चित्र: अनन्या सिंह: वर्तमान में एनआईडी, असम में कम्युनिकेशन डिज़ाइन की पढ़ाई कर रही हैं।

यह लेख *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित पुस्तक *सामाजिक अध्ययन नवाचार* से साभार।

दाईं सूँड के गणेशजी

जयंत विष्णु नारलीकर

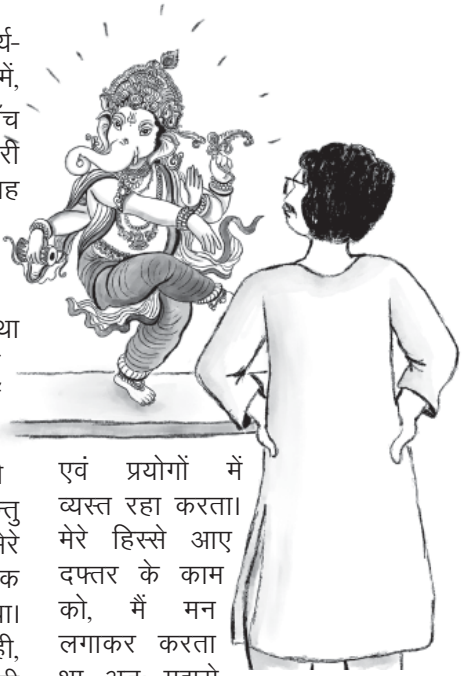

सँजू द्वारा बताया गया आश्चर्य-जनक किस्सा उसी के शब्दों में,

"तुम्हें शायद याद हो कि पाँच साल पहले, मैंने एक सरकारी नौकरी के लिए आवेदन दिया था। उस जगह के लिए किसी वैज्ञानिक एवं तकनीशियन की आवश्यकता थी। काम गुप्त किस्म का था। फण्डामेंटल फिज़िक्स तथा इलेक्ट्रॉनिक्स, दोनों विषयों में मैंने उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। अतः वहाँ मेरी नियुक्ति आसानी-से हो गई।

"महत्वपूर्ण काम मिलने की वजह से मैं बहुत खुश था परन्तु जल्दी ही मेरी खुशी धुल गई। मेरे काम का स्वरूप डेस्कवर्क अधिक और प्रयोगशाला का काम कम था। इसके साथ लाल फीताशाही, सीनियर लोगों की हुकूमत, उनकी मर्ज़ी के मुताबिक चलना, नई सूझ-बूझ के प्रति निरुत्साह, सहकर्मियों के बीच ईर्ष्या-डाह आदि सब कुछ वहाँ भी मौजूद था। इसीलिए मैंने औरों से सम्पर्क कम ही रखा। काम तक ही सब से सम्बन्ध सीमित रखे थे मैंने। वहाँ मेरे अधिकांश सहकर्मी चाय-पानी और गपशप में ही अधिक समय बिताया करते परन्तु मैं अपने अध्ययन एवं प्रयोगों में व्यस्त रहा करता। मेरे हिस्से आए दफ्तर के काम को, मैं मन लगाकर करता था, अतः मुझसे किसी को कोई शिकायत नहीं थी। मैं अपना समय किस प्रकार बिताता हूँ, इस ओर किसी का ध्यान नहीं था।

"गुरुत्वाकर्षण तथा मूलभूत कणों के विषय में मुझे अनुसन्धान करना था। पिछले कई वर्षों से एक अजीबोगरीब कल्पना मेरे मन में आती रही, उसे मूर्त रूप देने का मैंने निश्चय कर लिया था। उस प्रयोग के

लिए लगने वाले उपकरण हमारी प्रयोगशाला में उपलब्ध थे। इससे पहले कि मैं अपने प्रयोग के बारे में कुछ कहूँ, मैं अपनी मूल परिकल्पना को विस्तार से बताता हूँ।

"आइन्स्टाइन के गुरुत्वाकर्षण के नियम के अनुसार, अन्तरिक्ष एवं काल के गुण, उस में निहित वस्तुओं पर निर्भर करते हैं। यदि किसी भाग में कोई भी वस्तु उपस्थित नहीं है तब अन्तरिक्ष एवं काल की ज्यामिति (रेखागणित), युक्लिड की ज्यामिति होती है जिसे हम स्कूल में पढ़ते हैं। इसके ठीक विपरीत, यदि उस अवकाश में किसी विशाल द्रव्यमान अथवा ऊर्जा की वस्तु को रख दिया जाए तब उस भाग की ज्यामिति बदल जाती है। उस स्थान में सरल रेखाओं की दिशा परिवर्तित हो जाती है। हम कहते हैं कि प्रकाश सरल रेखा में गमन करता है परन्तु किसी भीमकाय वस्तु के निकट से गुज़रते समय प्रकाश की दिशा बदल जाती है। खगोलशास्त्रीय विधियों ने इस प्रकार के बदलाव को स्पष्ट कर दिया है जिसे वैज्ञानिक कसौटी पर परखा गया है। आइन्स्टाइन का सिद्धान्त है कि 'वस्तुजनित गुरुत्वाकर्षण की वजह से अवकाशकाल का वक्रीकरण होता है', इसी सिद्धान्त पर सारे परिणामों को जाँचा-परखा गया है।

"मैं तुम्हें वक्रगामी अन्तरिक्ष-काल और उसकी अपनी ज्यामिति आदि के बारे में भाषण देकर परेशान करना नहीं चाहता। परन्तु मेरी अपनी कल्पना को स्पष्ट करने से पहले यह प्रस्तावना आवश्यक थी क्योंकि इसके आगे मैं, अन्तरिक्ष काल में बल पड़ने (यानी ऐण्ठन) की कल्पना को स्पष्ट करने वाला हूँ।

"तुमने 'मोबियस की पट्टी' का नाम सुना होगा। पतलून पहनने पर हम जो बेल्ट पहनते हैं, उसे यदि समतल मेज़ पर फैलाकर रखा जाए तब उसके दोनों पृष्ठभाग (बेल्ट का निचला एवं ऊपरी, दो पृष्ठभाग होते हैं) समतल होते हैं। युक्लिड की ज्यामिति उन पर लागू होती है। जब उस बेल्ट को कमर पर बाँधा जाता है तब वह वक्र हो जाता है और उसके दोनों पृष्ठों पर 'अयुक्लिडीय' ज्यामिति के नियम लागू हो जाते हैं। इस स्थिति में भी, उसके दो पृष्ठभाग तो बने ही रहते हैं। अब यदि हम बेल्ट को ऐण्ठन यानी बल देकर कमर पर बाँधते हैं तब इस बेल्ट का एक ही पृष्ठभाग बन जाता है। इसे ही 'मोबियस की पट्टी' कहते हैं।

"मानो उस पट्टी पर रेंगने वाले जीव रहते हैं जिनकी लम्बाई-चौड़ाई है पर उनमें ऊँचाई नहीं है। मानो इस प्रकार का एक मनुष्याकृति जीव... जिसका सिर्फ बायाँ हाथ (यानी भुजा) है, वह इस कमर पर बाँधी हुई बेल्ट जैसी पट्टी पर रहता है। (याद रहे कि हम चपटे मनुष्य की संकल्पना कर रहे हैं।) अब यदि वह आदमी

उस पट्टी पर कितनी ही बार गोल-गोल घूम ले, वह बाएँ हाथ वाला ही आदमी रहेगा। परन्तु यदि, वह मोबियस पट्टी पर (यानी घुमाव खाए बेल्ट पर) एक पूरी परिक्रमा कर लेता है तब वह दाहिने हाथ वाला आदमी बन जाएगा। यदि तुम्हें यकीन नहीं तो कागज़ की पट्टी की मोबियस पट्टी बनाकर, खुद जाँच लो। देखो यह चित्रः

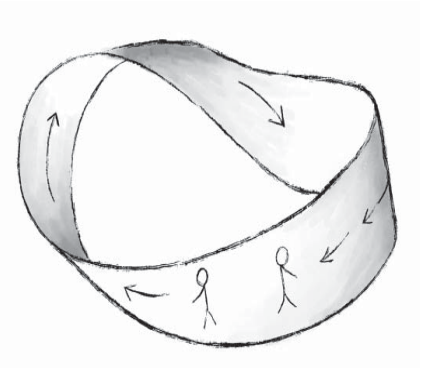

"इस पर रेंगते हुए उस चपटे जीव को जिस चमत्कार का अनुभव होता है, वह बात हमें चमत्कार नहीं लगती, क्योंकि हम उस पट्टी को तीन आयामों, यानी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई में देखते हैं। उस पट्टी में स्थित बल

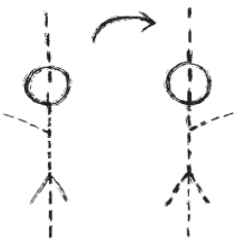

यानी घुमाव की वजह से, वह चपटा आदमी, उसकी आपाद मस्तक रेखा (उसके सिर से पैरों तक की रेखा) के गिर्द आधा घूम जाता है। और इसी वजह से, उसका बायाँ हाथ दाहिनी ओर पलट जाता है।

"यदि ऐसी ऐण्ठन हमारे तीन आयामों के अवकाश में पड़ जाए, तब? हम जैसों को, यानी जिनकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई है, वह चमत्कार ही दिखाई देगा। एक खास प्रकार के घुमाव वाले अवकाश में, एक चक्कर लगाने पर, किसी भी वस्तु का उसके प्रतिबिम्ब में रूपान्तर हो जाएगा। याद रहे कि इसे हम आँखों से देख नहीं पाते क्योंकि उसके दृश्य रूप के लिए हमें चौथे आयाम की आवश्यकता होगी। परन्तु गणितज्ञ लोग, इसे गणित की भाषा में स्पष्ट कर सकते हैं। वे अनुभव, जो हमारी इन्द्रियों से परे हैं, अमूर्त गणित के लिए वे सहज साध्य हैं।

"यह सारा कल्पनाशक्ति का खेल समझो। क्या अन्तरिक्ष में ऐण्ठन पैदा की जा सकती है? इस मुद्दे पर अनेक वैज्ञानिकों ने सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं। पर वे सारे सिद्धान्त, अपरिपक्व हैं और उन्हें मान्यता भी नहीं मिली है। वैसे इस सब की जड़ में एक विचार है कि मूलभूत कणों को उपयोग में लाकर, अन्तरिक्ष में ऐण्ठन निर्माण करने की सम्भावना हो सकती है। किन्हीं विशेष मूलभूत कणों में धुरीय चक्रण (spin)

जैसे कुछ आन्तरिक गुण होते हैं। चक्रण का अर्थ है - हमारे प्रतिदिन के व्यवहार में किसी वस्तु का उसके अक्ष के चारों ओर घूमना। परन्तु मूलभूत कणों के सन्दर्भ में इसका अर्थ भिन्न है। मूलभूत कणों के गणित में, अमूर्त रूप के भिन्न-भिन्न धुरीय चक्रण होते हैं। यदि किसी विशेष धुरीय चक्रण वाले मूलकणों को, बड़े पैमाने पर अवकाश में छोड़ा जाए तब ऐण्ठन यानी घुमाव पैदा किया जा सकता है, ऐसा माना जाता है। परन्तु इसके लिए ज़रूरी है कि इन मूलभूत कणों को, एक ही दिशा में घूमना होगा। यदि उनके धुरीय चक्रण की भिन्न-भिन्न दिशाएँ रहीं तब उनका कोई परिणाम नहीं होगा।

"हमारी प्रयोगशाला में मूलकणों को प्रवाहित करने का एक बहुत बड़ा यंत्र है। अतः उसकी सहायता से इच्छित प्रवाह तैयार करने की मैंने ठान ली। नए प्रयोग की अनुमति के लिए मैं सरकारी फीताशाही की प्रक्रिया में अटकना नहीं चाहता था। क्योंकि मेरे प्रपोज़ल को कई फाइलों में से गुज़रते हुए, नकारात्मक जवाब मुझ तक पहुँचते-पहुँचते मेरे सेवानिवृत्त होने का समय आ गया होता। उन समस्त फाइलवालों के सन्तोष के लिए मैंने अपने प्रयोग को सरकारी काम का एक आवश्यक भाग होने का आभास कराया। उस यंत्र के निकट अपना केबिन बनवा लिया। उस केबिन पर 'टॉप सीक्रेट', 'डेंजरस', 'डू नॉट एंटर' जैसी तख्तियाँ लगाकर सभी की दखलन्दाज़ी से अपने आप को बचा लिया।

"इस तरह मैं इस प्रयोग के लिए अधिक-से-अधिक समय दे पाया। जिस काम को मैंने हाथ में लिया था, वह बहुत ही कठिन था। उस यंत्र से, अपने इच्छित मूलकणों को समग्र रूप से प्राप्त करने के प्रयत्न, मैंने दिन-रात जारी रखे। परिश्रम करते-करते दो वर्ष बीत गए। अन्त में, करीब छः महीने पहले मुझे इस प्रयोग में सफलता मिली।

"प्रयोग के लिए मैंने, अपनी रिस्टवॉच का उपयोग किया। उसके प्रतिबिम्ब में रूपान्तरित होते समय क्या उसकी कालमान पद्धति बदल जाती है, इसे मैं देखना चाहता था। घड़ी को मैंने उचित स्थान पर रखा और उस पर मूलभूत कणों का संवेग प्रवाह डाला। उस प्रवाह में घड़ी को एक विशेष गोल घेरे के मार्ग में घुमाते ही वो प्रतिबिम्ब में परिवर्तित हो गई। उसके कालमान में कोई फर्क नहीं पड़ा। अपने प्रयोग की सफलता को देखने के पश्चात् मैंने प्रवाह को रोक दिया और घड़ी अपने मूल स्वरूप में लौट आई। यानी कि मुझे परिवर्तन को स्थायी रूप देने में सफलता नहीं मिली थी।

"उसी प्रयोग को मैंने भिन्न-भिन्न तरीकों से दोहराया और अन्त में मुझे सफलता मिल ही गई। मूलभूत कणों के प्रवाह में, घड़ी का रूपान्तर हो

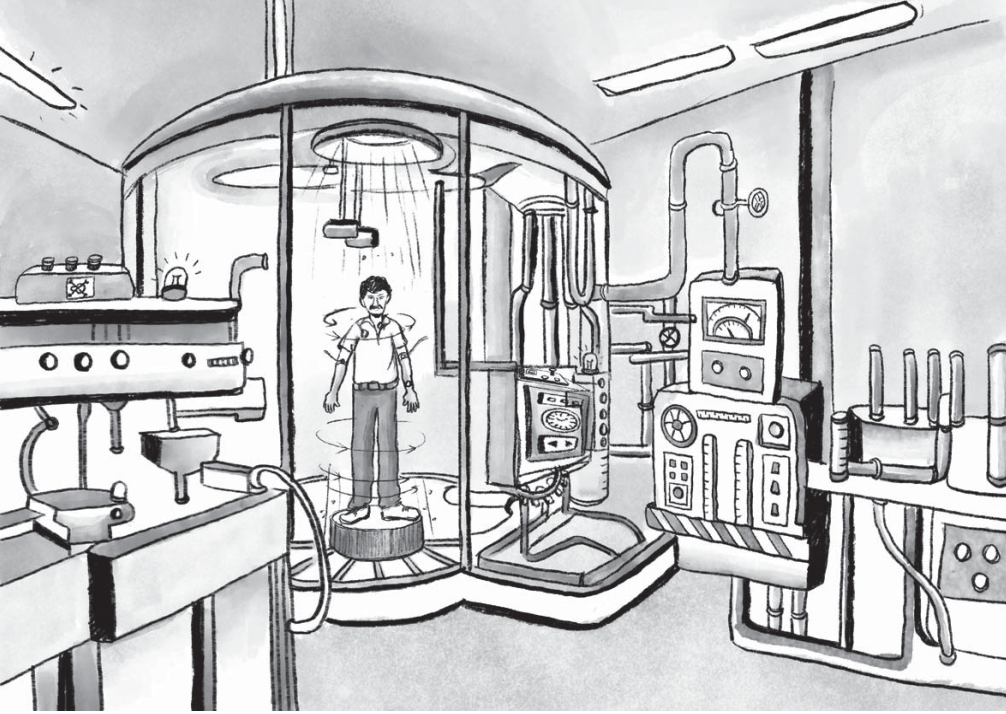

जाने के पश्चात्, प्रवाह बन्द करने से पहले ही यदि घड़ी को बाहर निकाल लिया जाए, तो घड़ी का परिवर्तन स्थायी बना रहता है। यही प्रयोग मैंने भिन्न-भिन्न वस्तुओं पर किया और हर बार मेरा वही अनुभव रहा। हालाँकि, इस परिवर्तन का रहस्य मैं अभी तक सुलझा नहीं पाया हूँ।

"चार दिसम्बर को मैंने उपर्युक्त प्रयोग स्वयं पर करने का निर्णय किया। इससे पहले मैंने कीड़ों, तितलियों, गिनीपिग आदि प्राणियों पर इसका प्रयोग करके देख लिया था और मुझे विश्वास हो गया था कि ऐसा करने में जान को खतरा नहीं है। फिर भी यह सोचकर कि इस प्रयोग में यदि मेरे साथ कोई गहरा हादसा हो जाता है तो अन्य शोधकर्ताओं को मेरे शोधकार्य से लाभ मिले, मैंने अपने प्रयोग की समूची जानकारी लिखकर एक सुरक्षित जगह पर रख दी। और मेरे रूपान्तर होने के पश्चात्, मेरे कमरे में घटने वाली सारी गतिविधियों को वीडियो टेप पर रिकॉर्ड करने की व्यवस्था कर डाली। इसके अलावा विभिन्न यंत्र मेरे शरीर की अलग-अलग प्रक्रियाओं का मापन करने वाले थे ही। इस पूरी तैयारी के बाद मैंने मूलभूत कणों के प्रवाह को चलाया और उसमें प्रवेश कर लिया।

"उस प्रवाह में उचित मार्ग से घेरा पूरा करने पर मेरा परिवर्तन प्रतिबिम्ब में हो गया और प्रयोग के दौरान मुझे बदलाव की कोई अनुभूति भी नहीं

हुई। बगैर किसी वेदना और चक्कर के मेरा रूपान्तर हो गया। मेरे साथ-साथ मेरे धारण किये हुए कपड़े, घड़ी, जूते भी बदल गए! प्रवाह से बाहर निकलकर अपना परीक्षण किया मैंने! अब मैं अक्षरों को पढ़ने में असमर्थ हो गया था क्योंकि मेरे दिमाग में उल्टे अक्षर पढ़ने की जानकारी उपलब्ध थी। मैं बोतल का कॉर्क स्क्रू से खोलने अथवा बन्द करने में गड़बड़ करने लगा, क्योंकि स्क्रू की रचना मेरे दिमाग में तथा वास्तविक रूप में, सर्वथा विपरीत थी। मेरे दाहिने हाथ की कार्य निपुणता, मेरे बाएँ हाथ में आ गई। अपने तमाम अनुभवों को मैंने लिखकर रख लिया। इसके साथ-साथ यंत्र द्वारा मेरे निरीक्षण भी जारी थे।

"कुछ समय पश्चात् मैं फिर 'सीधा' होने के लिए उस प्रवाह में जा खड़ा हुआ और बाहर आने पर पूर्वस्थिति में आ गया। परन्तु, इस प्रयोग का मेरे दिमाग पर गहरा असर पड़ा। मेरी 'उल्टी' अवस्था की सारी स्मृतियाँ नष्ट हो गई थीं। प्रयोग से पहले की मेरी स्मृति बिलकुल ठीक थी परन्तु प्रतिबिम्बित अवस्था में मैंने क्या-क्या किया, मुझे बिलकुल याद नहीं रहा। परन्तु वीडियो टेप रिकॉर्डर में सब कुछ अंकित हो गया था। अतः मैं उसे देख पाया। उसी प्रकार से मैंने अपने अनुभवों को अपनी ही लिखाई में पढ़ा... मात्र उसे पढ़ने के लिए मुझे

शीशे की ज़रूरत पड़ी क्योंकि वे अक्षर उलटे थे।"

सँजू की सारी हकीकत सुनते समय मुझे लगा कि मैं कोई तिलिस्मी अथवा जादुई कहानी सुन रहा हूँ। परन्तु अविश्वास की गुंजाइश भी न थी क्योंकि सँजू का प्रतिबिम्ब ही मेरे सामने बैठा था। उसकी कहानी चल रही थी। उस दौरान मेरा ध्यान दाहिनी सूँड वाले गणेशजी की ओर गया। मेरे मन में एक विचार उठा...

"रुको सँजू! यह गणपति भी रुपान्तरित ही हैं क्या?" मैंने उससे पूछा।

"हाँ प्रताप! यदि यकीन न हो तो म्यूज़ियम में जाकर देख लो।" सँजू की नज़रों में मज़ाकिया भाव था।

मैं उसे अपने पड़ोस में स्थित म्यूज़ियम की इमारत में ले गया। पेशवाओं के समय की वस्तुओं के

सेक्शन में दौड़कर पहुँचा और देखा कि बाईं सूँड वाले गणेशजी की जगह खाली पड़ी थी। सँजू द्वारा दिए गणेशजी को मैंने वहाँ रख दिया और चुपचाप अपनी स्टडी में लौट आया।

"सॉरी प्रताप, मैंने तुम्हें धोखा दिया है.... यदि चाहो तो मैं गणेशजी की मूर्ति को पूर्ववत कर दूँगा। तुमसे मुलाकात करने से पहले हल्के-से मज़ाक के लिए मैंने ऐसा किया था। मैं पिछले हफ्ते तुम्हारे म्यूज़ियम गया था। वहाँ से चुपचाप वह मूर्ति उठा ले गया और आज तुम्हें भेंट में दे दी।" सँजू ने खुलासा किया।

अब मेरा दिमाग काम करने लगा। प्रमोद रांगणेकर द्वारा किया गया पराक्रम, उसका अपना न होकर, उसके प्रतिबिम्ब का था। तभी वह बाएँ हाथ से कुशलतापूर्वक गेंदबाज़ी कर सका। उसकी इस अनपेक्षित गेंदबाज़ी को इंग्लैंड की टीम खेल न पाई। यह बात मैंने सँजू से कही, तब वह बोला, "बिलकुल ठीक! बीस तारीख की शाम प्रमोद मेरे पास आया था। वह बहुत ही उदास था। उसे चाह थी कि उसका अन्तिम मैच स्मरणीय हो। परन्तु उसकी बॉलिंग सही नहीं जा रही थी। प्रभाव कम हो गया था। प्रतिस्पर्धी उस बॉलिंग के अभ्यस्त हो गए थे। दूसरे दिन उसे बॉलिंग करनी थी और उसके मन में यह डर समाया था कि यदि वह असफल होता है तो आलोचक उसे बख्शेंगे नहीं। उससे बातचीत करते हुए मेरे मन में एक अनोखी कल्पना आई। यदि उसका रूपान्तर प्रतिबिम्ब में कर दूँ, तो? अर्थात्.....परन्तु मैं उसे यह रहस्य कदापि नहीं बता सकता था।

"मैंने उसे कॉफी में नींद की दवाई पिला दी। उसके निद्राधीन हो जाने के पश्चात् अपनी कार से उसे अपनी प्रयोगशाला में ले गया। किसी 'टॉप सीक्रेट' प्रयोगशाला में बाहरी आदमी को ले जाना, नियमों के खिलाफ है। परन्तु, नियमों से बच निकलने की मेरी चतुराई काम आ गई। मैंने प्रमोद को अन्दर ले जाकर, उसका रूपान्तर प्रतिबिम्ब में किया, और उसे घर छोड़ आया।

"दूसरे दिन उसका फोन आया कि वह हिस्टेरिकल अनुभव कर रहा है और उसका दाहिना हाथ बहुत कमज़ोर हो गया है। पढ़ते समय उसे अक्षर उल्टे दिखाई दे रहे हैं आदि-आदि...। फिर उसने पूछा कि क्या पिछली रात मैंने उसे कोई भयंकर

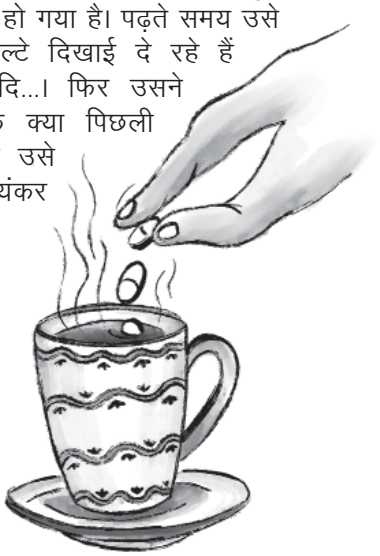

दवा पिला दी थी? मैं उसके घर पहुँचा और उसे समझाया कि वह फिक्र न करे! यदि दाहिना हाथ कमज़ोरी महसूस कर रहा है तो...तो वह बाएँ हाथ से गेंदबाज़ी करे। उसे लगा कि मैं मज़ाक कर रहा हूँ परन्तु थोड़ी-सी नेट प्रेक्टिस के बाद उसे मेरी बात पर यकीन हो गया....और तुम तो जानते ही हो कि फिर क्या हुआ।

"मैच के पश्चात् उसे मैं ही ले गया था। मैंने शहर से बाहर एक छोटी-सी कॉटेज में उसे छः दिनों तक रखा। उसके मन एवं शरीर पर गहरा बोझ-सा पड़ गया था। पुलिस तथा अखबार वालों को मैंने ही फोन किया था। सातवें दिन जब वह कुछ नॉर्मल हुआ तब दोबारा उसका रूपान्तर कर मैं उसे शहर ले आया। परन्तु, पिछले हफ्ते की कोई भी बात उसकी स्मृति में नहीं थी।"

प्रमोद की अभूतपूर्व बॉलिंग का खुलासा हो जाने पर मुझे और भी छोटी-छोटी बातों का स्पष्टीकरण मिलता चला गया। अपने बाएँ हाथ के करतब को छिपाने के उद्देश्य से ही सँजू ने हमारे यहाँ काँटा-छुरी से खाना खाया। उसे खाने में काफी समय भी लग रहा था। उसने अरुण की पुस्तक पर हस्ताक्षर भी नहीं किए। आईने में दिखने वाले अक्षरों को, उसी ढंग से लिखना कितना कठिन है, इसका अनुमान हम लगा ही सकते हैं।

"सँजू, तुम अपनी इस अनूठी खोज को तत्परता से प्रकाशित करवाओ... देखो, तुम 'नोबेल प्राइज़' से ज़रूर नवाज़े जाओगे।" मैंने सलाह दी।

"नहीं प्रताप! ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि मेरा यह अनुसन्धान अभी भी परिपूर्ण नहीं है। प्रतिबिम्बित अवस्था में होने वाला विस्मरण... उससे उबरने के उपाय, इसका कोई हल नहीं ढूँढ पाया हूँ मैं! जब यह गुत्थी सुलझेगी तभी चैन की साँस ले सकूँगा मैं... आज तुम्हारे पास आया... इतना लम्बा भाषण दिया... पता नहीं यह सारा भी मुझे याद रह पाएगा अथवा नहीं। मुझे अपनी इस खोज की अपूर्णता को पूरा करना है!" सँजू के अन्दर छिपा एक परफेक्शनिस्ट बोल रहा था। "उस प्रयोग के लिए मुझे एक दुर्लभ वस्तु चाहिए... उसी की खोज में हूँ मैं..."

"ठीक है। परन्तु मेरी एक व्यावहारिक सलाह मानोगे?... तुम जिस अज्ञात शक्ति से जूझ रहे हो, उसमें तुम्हारे साथ घोर हादसा होने की आशंका है। कम-से-कम उसका आज तक का समूचा विवरण लिखकर सुरक्षित स्थान पर रख दो, ताकि तुम्हारी खोज का श्रेय तुम्हें ही मिले।" मैंने बड़ी आस्था से कहा।

"न तो मैं दुनिया से श्रेय की अपेक्षा रखता हूँ और न ही नोबेल प्राइज़ की। मेरी अपेक्षाएँ भिन्न हैं और उसमें मैं तुम्हारी मदद चाहता हूँ। तुम्हारे कहे अनुसार मैंने अपने समस्त प्रयोगों

का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक लिख रखा है। उस स्थान को सिर्फ मैं ही जानता हूँ। उस विवरण को पढ़कर कोई भी जानकार व्यक्ति अपने आप को प्रतिबिम्ब में रूपान्तरित कर सकता है। इतना तो तुम समझ ही गए होगे कि यह 'पुष्पक विमान इफेक्ट' नहीं है!" सँजू ने हँसते हुए कहा।

'पुष्पक विमान इफेक्ट' मुहावरा हमारी पुराने दिनों की चर्चा की याद दिलाता है। बहुत साल पहले हम चर्चा कर रहे थे तब मैंने कहा था कि हमारे पूर्वज बहुत पढ़े-लिखे थे। विज्ञान में उन्होंने खूब प्रगति की थी, ऐसा पुराणों में लिखा है। मेरे इस कथन को खारिज करते हुए सँजू ने कहा था कि पुष्पक विमान यानी 'हेलीकॉप्टर', घटोत्कच को मार गिराने वाली, इन्द्रदेव की दी हुई शक्ति का मतलब है 'गाइडिड मिसाइल' जो बड़ी दूर तक संहार कर सकती थी... इस प्रकार के उदाहरण किसी वैज्ञानिक के लिए काफी नहीं हैं। जब तक इन सभी वस्तुओं को निर्मित करने की शास्त्रीय जानकारी, पुराण ग्रन्थों में नहीं पाई जाती, तब तक यह सब कुछ विज्ञान की दृष्टि में, 'कविकल्पना' से अधिक कुछ नहीं है। सँजू के इन मुद्दों का जवाब आज भी मेरे पास नहीं है।

"मैं क्या मदद कर सकता हूँ, बताओ!" मैंने पूछा क्योंकि मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मेरे ज्ञान एवं अनुभव का इस खोज से क्या सम्बन्ध हो सकता है। तब सँजू ने कहा, "तुम एक बहुत बड़े एवं प्रतिष्ठित म्यूज़ियम के क्यूरेटर हो। मेरे परिवर्तित किए गणेशजी को देखकर तुम धोखा खा गए। तुम्हें वह दुर्लभ खोज-सा लगा। तो इसी प्रकार की अनेक दुर्लभ एवं अमूल्य वस्तुओं को बनाकर दुनिया से रुपया वसूलने का इरादा है मेरा। यदि एकाध स्टैंप उलटा छप जाता है तो वह भी अत्यन्त दुर्लभ माना जाता है। उसका मूल्य एकदम से बढ़ जाता है। तुम्हारे पास प्राइवेट कलेक्टर्स की ओर से ऐसी दुर्लभ वस्तुओं के बारे में ज़रूर पूछा जाता होगा। मेरे द्वारा तैयार की गई कृतियों को अपनी अथॉरिटी पर तुम सहज रूप से बेच सकते हो। मिलने वाले रुपयों में तुम्हारी और मेरी साझेदारी होगी।"

मुझे सँजू का प्रस्ताव बिलकुल भी पसन्द नहीं आया। उसके अनुसार पुरातन एवं दुर्लभ वस्तुओं के बदले, बहुत सारा पैसा कमाया जा सकता है। उसके द्वारा तैयार किए गए, दुर्लभ एवं विशेष कृतियों के प्रतिबिम्ब, ऐसी वस्तुओं का संग्रह करने वाले लोगों को बेचना मेरे लिए असम्भव न था परन्तु मुझे यह कार्य और व्यवहार नीति-विरोधी लगा। ऐसा करना मेरे पद एवं अनुभव का दुरुपयोग ही होता।

मैंने सँजू से काफी बहस की। उसे इस मार्ग से विमुख करने का भी बहुत प्रयास किया। परन्तु, किसी बात को ठान लेने पर किसी भी कीमत पर

उससे हटना, सँजू को कभी भी मंजूर न था। बचपन से यह आदत थी उसकी।

"ठीक है प्रताप! तुम्हें नीति के मार्ग पर चलना है तब खुशी से जाओ उस राह, परन्तु मुझे उपदेश मत दो। कम -से-कम मेरे रहस्य को तो गुप्त रख सकोगे न तुम?" अन्त में उसने पूछा।

"तुम्हारी कहानी को मैं पूर्णतया भूल जाऊँगा। विश्वास रखो कि मैं किसी के सामने इस राज़ को नहीं खोलूँगा। ...तुम चिन्ता मत करना।" और सँजू चला गया।

* * *

कुछ दिनों पश्चात् डिफेंस की प्रयोगशाला में एक बहुत बड़ी चोरी हो गई। एक अत्यन्त दुर्लभ धातु वहाँ की तिजोरी में से गायब हो गई। सेफ के कॉम्बीनेशन की जानकारी बहुत ही कम लोगों को थी। खास बात तो यह कि चोर ने अपनी उँगलियों के निशान सेफ पर छोड़ रखे थे।

पुलिस का अन्दाज़ा था कि चोरी करने वाला महकमे का कोई वैज्ञानिक

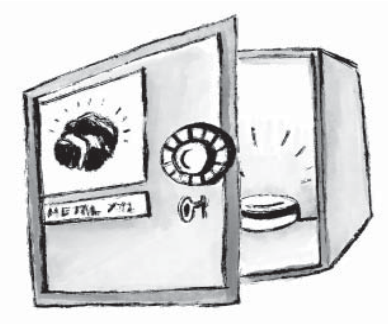

ही है, क्योंकि जिस धातु की चोरी हुई थी, उससे सामान्य जनों को कुछ फायदा न था। सेफ का कॉम्बीनेशन भी गुप्त ही था। सेफ पर पाए गए उँगलियों के निशान, वहाँ के किसी भी वैज्ञानिक की उँगलियों के निशान से मेल नहीं खा रहे थे। सेफ बनाने वालों का ऐसा दावा था कि कोई भी सामान्य व्यक्ति उसे खोल ही नहीं सकता।

पर मेरी आशंका कुछ और ही थी। मुझे सँजू पर शक हो रहा था। उसने एक बार कहा था कि वह अपने प्रयोग के लिए किसी विशेष एवं दुर्लभ वस्तु की खोज में है। उँगलियों के निशान जानबूझकर छोड़ने में उसकी विकृत विनोद बुद्धि ही दिखाई दे रही थी। पुलिस के दिमाग में, उन निशानों को शीशे में देखने का विचार आ ही कैसे सकता है!

इस घटना के कुछ दिन बाद अखबार की हेड लाइन पढ़कर, मैं सकते में आ गया। पहले पेज पर मोटे अक्षरों में छापा था- 'डिफेन्स लैबोरेटरी' में दुर्घटना। वैज्ञानिक की हालत गम्भीर एवं चिन्ताजनक।

किसी कारणवश उस वैज्ञानिक का नाम गुप्त रखा जा रहा था। पर, मुझे बार-बार ऐसा लग रहा था कि वह वैज्ञानिक सँजू ही है।

मैंने जान-पहचान और सिफारिश लगाकर गहरी खोजबीन की तो पाया कि मेरी आशंका सही है।

सँजू के प्रयोग करते समय एक भारी विस्फोट हुआ और समूची सामग्री टूट-फूट कर तहस-नहस हो गई। सँजू का भाग्य अच्छा था कि विस्फोट की मुख्य मार से वह बच गया। फिर भी करीब एक महीने वह बेहोश पड़ा था।

"सँजू मेरा निकट का दोस्त है और विस्फोट के कुछ दिनों पहले वह मेरे घर खाना खाने आया था," मेरे इस कथन के कारण उसके डॉक्टर ने मुझे बुलवा लिया, क्योंकि विस्फोट से पहले कई दिनों तक सँजू से किसी की बात ही नहीं हुई थी। उससे सम्पर्क वाला कोई भी व्यक्ति मिल नहीं पाया था। वह बिलकुल एकान्त जीवन जी रहा था। अपनी प्रयोगशाला के सहयोगियों से वह बात ही नहीं करता था। सँजू के होश में आने की सम्भावना थी, अतः डॉक्टर चाहते थे कि उस समय मैं वहाँ उपस्थित रहूँ।

परन्तु होश में आने पर सँजू ने मुझे नहीं पहचाना। इसका कारण भी जल्द ही स्पष्ट हो गया। सँजू का स्मृति-पटल पूर्णतया धुल गया था।

अपने प्रयोग को सफल बनाने के लिए, पता नहीं उसने कौन-सा साहस किया होगा। प्रतिबिम्ब से मूल रूप में आने पर अपनी स्मरण शक्ति बनाए रखने के उद्देश्य को पूरा करने के चक्कर में, उसकी समूची स्मरणशक्ति

ही नष्ट हो गई थी। उसका भाग्य अच्छा था जो वह खुद मूल रूप में लौट आया और सकुशल है। उसका दिमाग अन्य सब बातों और पहलुओं में ठीक ही काम कर रहा है परन्तु आज वह खुद ही नहीं जानता कि उसकी खोज कितनी महान और अमूल्य है। अपने प्रयोग की लिखित जानकारी को उसने, पता नहीं किस 'सुरक्षित' जगह पर छुपाकर रखा है। वह मिलने तक, मुझे बताया गया समस्त किस्सा किसी को भी अविश्वसनीय ही प्रतीत होगा।

दुनिया की बात छोड़ें, मुझे खुद यह तमाम दास्तान किसी स्वप्न जैसी लगती है। क्या प्रमोद की गेंदबाज़ी की जड़ में ऐसी अनहोनी घटना वाकई घटित हुई थी? क्या मैंने सँजू को वाकई प्रतिबिम्बित अवस्था में देखा था?

मन में जब कभी आशंकाओं का तूफान उमड़ पड़ता है तब मैं खुद म्यूज़ियम में जाकर अपने आप को सन्तुष्ट कर लेता हूँ क्योंकि वहाँ एक आले में इस सारी घटना के साक्षात् साक्षी विराजमान हैं....।

जयंत विष्णु नारलीकर (1938-2025): प्रबुद्ध वैज्ञानिक और विज्ञान कथाकार। कैंब्रिज से गणित में डिग्रियाँ हासिल करने के बाद उन्होंने खगोल-विद्या और खगोल-भौतिकी में विशेष प्रावीण्य प्राप्त किया। किंग्ज़ कॉलेज के फेलो और इंस्टिट्यूट ऑफ थिओरेटिकल एस्ट्रोनॉमी के संस्थापक सदस्य के रूप में कुछ समय कैंब्रिज में रहे। IUCAA (Inter-University Centre for Astronomy and Astrophysics), पुणे के संस्थापक सदस्य। 'पद्मभूषण' और 'पद्मविभूषण' सहित कई राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित।

इस अंक के प्रकाशन के दौरान ही जयंत विष्णु नारलीकर के निधन की दुखद खबर आई। यह अंक उनकी याद और कहानियों को समर्पित।

सभी चित्र: श्रेया टी.एस.: एनिमेटर और इलस्ट्रेटर हैं। कम्यूनिकेशन डिज़ाइन में विशेषज्ञता के साथ एनआईडी से स्नातक किया है। बच्चों की कहानी की किताबों और कॉमिक्स पर काम करना बेहद पसन्द है। इन्हें अपने बचपन की कहानियों और अपने दैनिक जीवन में देखी जाने वाली कहानियों से प्रेरणा मिलती है।

यह कहानी सन् 2013 में *विज्ञान प्रसार* द्वारा प्रकाशित जयंत विष्णु नारलीकर के विज्ञान कथाओं के संकलन *कृष्ण विवर और अन्य विज्ञान कथाएँ* से साभार।

सवालीराम

सवाल: जब कुत्ता पेशाब करता है तो वह एक टांग क्यों उठा लेता है?

– गिरेन्द्र दायमा, भोपाल, म.प्र.

जवाब: कुत्ते इन्सान के सामाजिक परिवेश से काफी जुड़ाव रखते हैं। हम अपने आसपास या घरों में इन्हें सामान्य लोगों के साथ रहते हुए घरों की रखवाली करते हुए देखते हैं। यदि किसी के घर में कुत्ता पल रहा होता है तो वह परिवार के किसी सदस्य से कम हिस्सेदारी नहीं रखता। कुत्ते के साथ रहते हुए हम भी उसकी ज़रूरतों और हरकतों को समझने लगते हैं। यह सवाल भी इसी का परिणाम है। ऐसा हमेशा देखा जाता है कि कुत्ते टांग उठाकर पेशाब करते हैं। विशेषकर, नर कुत्तों में यह एक सामान्य लेकिन महत्वपूर्ण व्यवहार है। आइए, हम इस सवाल का जवाब खोजने का प्रयास करते हैं।

इस सवाल को समझने के लिए हमें पशु व्यवहार विज्ञान (Ethology), हॉर्मोनल प्रभाव, और संचार के तरीकों को समझना होगा।

पशु व्यवहार

कुत्ते भेड़ियों से विकसित हुए हैं, लेकिन वे सामाजिक और क्षेत्रीय

जानवर होते हैं। वे इन्सानों के आसपास पाए जाते हैं। लेकिन पेशाब करने का तरीका कुत्ते और भेड़िये, दोनों का समान है। वे अपने क्षेत्र को चिह्नित करने के लिए पेशाब का उपयोग करते हैं। यह व्यवहार उनकी सुरक्षा, भोजन के संसाधनों, और सम्भोग के अवसरों को सुरक्षित करने में उनकी मदद करता है। कुत्तों में भी यह प्रवृत्ति बहुत पहले से मौजूद है, जहाँ वे अपने मूत्र के माध्यम से अपनी मौजूदगी का संकेत देते हैं। कुत्ते अक्सर खम्बे, खड़ी गाड़ी के टायर या दीवार पर पेशाब करते हैं ताकि पेशाब ज़मीन से थोड़ा ऊपर रहे। जब वे टांग उठाकर पेशाब करते हैं तो पेशाब ऊँचाई पर जाता है जिससे गन्ध लम्बे समय तक बनी रहती है और हवा के माध्यम से अधिक दूरी तक फैलती है। इसके ज़रिए वे अपने क्षेत्र की सीमा निर्धारित करते हैं। इससे अन्य कुत्तों को यह जानकारी मिलती है कि यह क्षेत्र पहले से ही किसी अन्य कुत्ते के नियंत्रण में है।

जैव रासायनिक और हॉर्मोनल प्रभाव

यदि हम इसे जैव रासायनिक दृष्टिकोण से जानने का प्रयास करें तो यह देखा गया है कि नर कुत्तों में टेस्टोस्टेरॉन हॉर्मोन की अधिकता होती है, जो प्रभुत्व जताने और अपने क्षेत्र को चिह्नित करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है। जब कुत्ते टांग उठाकर पेशाब करते हैं तो वे अपने मूत्र में फेरोमोन्स छोड़ते हैं, जो अन्य कुत्तों को उसकी उम्र, स्वास्थ्य, और प्रजनन की स्थिति के बारे में जानकारी देते हैं।

जैसा कि पहले ज़िक्र किया गया है कि जब कुत्ते टांग उठाकर पेशाब करते हैं तो पेशाब ऊँचाई तक पहुँचता है। इस ऊँचाई से अन्य कुत्ते उसके आकार का अन्दाज़ा लगा पाते हैं कि वह कुत्ता कितना बड़ा और शक्तिशाली होगा। यह रणनीति छोटे कुत्तों में अक्सर देखी जाती है, जो अपने मूत्र को ऊँचाई पर छिड़ककर बड़े और मज़बूत कुत्तों को भ्रमित करने की कोशिश करते हैं।

कुत्ते अत्यधिक सामाजिक जानवर होते हैं और पेशाब के माध्यम से एक-दूसरे की स्थिति का पता करते हैं। जब एक कुत्ता किसी अन्य कुत्ते के पेशाब की गन्ध को सूँघता है, तो उसे पेशाब करने वाले कुत्ते के स्वास्थ्य, लिंग, और प्रजनन की स्थिति के बारे में जानकारी मिलती है। टांग उठाकर पेशाब करना, इस संचार प्रणाली का अहम हिस्सा है।

कुत्ते को टांग उठाने के लिए सन्तुलन बनाए रखना पड़ता है, जो उनके मोटर कौशल को विकसित करता है। यह व्यवहार अक्सर किशोरावस्था में शुरू होता है, जब कुत्ते अपने शरीर के नियंत्रण और सामाजिक व्यवहार को विकसित कर रहे होते हैं।

मादा कुत्ते आम तौर पर टांग उठाकर पेशाब नहीं करते क्योंकि उनमें टेस्टोस्टेरोन का स्तर कम होता है। हालाँकि, कुछ मादा कुत्ते भी प्रभुत्व जताने या अन्य कुत्तों को सन्देश देने के लिए इस व्यवहार को अपनाते हैं।

टांग उठाकर पेशाब करना, यह भी दर्शाता है कि कुत्ते अपनी टांगों को गंदा नहीं करना चाहते। जब वे एक टांग उठाकर पेशाब करते हैं तो उससे उनकी दोनों टांगें सुरक्षित बनी रहती हैं और पेशाब उनकी टांगों पर नहीं छिटकता। अन्य सभी चौपाया जानवरों की बनावट कुछ इस तरह की होती है कि वे टांग नहीं उठा पाते और अक्सर पेशाब उनके पैर या पूँछ पर गिरता है।

इसके अलावा कुत्ते अपने रास्ते का अन्दाज़ा भी पेशाब के माध्यम से ही लगाते हैं। आपने अक्सर देखा होगा, यदि किसी कारणवश हम कुत्ते को उसकी जगह से कहीं दूर छोड़ देते हैं या वह रास्ता भटक जाए तो वह कुछ ही दिनों में अपने घर या मुहल्ले में वापस आ जाता है। दरअसल, वह अपनी पेशाब की गन्ध से रास्ता ढूँढ लेता है और उसके ज़रिए अपने मुहल्ले या घर वापस आ जाता है।

गंधर्व कुमार: शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्यि महाविद्यालय से वाणिज्य में स्नातक। किताबें पढ़ना और उनपर चर्चा करना पसन्द है। साथ ही, हमेशा नई किताबों की खोज में रहते हैं।

इस बार का सवाल: कभी-कभी नम मिट्टी खोदने पर काफी गहराई में मेंढक मिल जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि वे वर्षा के बाद किन्हीं ठण्डी जगहों पर रहने चले जाते हैं। परन्तु वर्षा होने के तुरन्त बाद, वे इतनी जल्दी ऊपर कैसे आ जाते हैं? क्या बारिश होने का आभास उन्हें पहले ही हो जाता है?

- वंशिका, कक्षा-8, होशंगाबाद, म.प्र.

आप हमें अपने जवाब sandarbh@eklavya.in पर भेज सकते हैं।

प्रकाशित जवाब देने वाले शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य को पुस्तकों का गिफ्ट वाउचर भेजा जाएगा जिससे वे पिटाराकार्ट से अपनी मनपसन्द किताबें खरीद सकते हैं।

RNI No.: MPHIN/2007/20203

प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री के साथ जयंत नारलीकर (1965)

प्रकाशक, मुद्रक, टुलटुल बिस्वास द्वारा निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन की ओर से, एकलव्य, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) से प्रकाशित तथा भण्डारी प्रेस, ई-2/111, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।